dhrupad annual

1988

१९८८

OBJECTIVES :

1. To present a chronicle of the wave of scholarly and popular awakening about Dhrupad that originated a few years ago.
2. To stimulate and promote scholarly work about Dhrupad.
3. To prepare reference material for research on various aspects of Dhrupad.

Bilingual Nature of the Journal :

Articles in English have been summarised in Hindi and *vice-versa*.
Subscriptions : Rs. 50/- Inland; Foreign $ 10.

उद्देश्य :

१. गत कुछ वर्षों में ध्रुपद के सम्बन्ध में विशेष (विद्वज्जनोचित) और सामान्य जागरण की जो लहर उठी है, उसका काल-क्रमानुसारी विवरण प्रस्तुत करना ।

२. ध्रुपद को लेकर विद्वत्तापूर्ण कार्य को प्रेरणा और प्रोत्साहन प्रदान करना ।

३. ध्रुपद के विभिन्न पक्षों पर शोधकार्य के लिए सामग्री प्रस्तुत करना ।

पत्रिका का द्विभाषामय स्वरूप :

अंग्रेजी लेखों का हिन्दी में और हिन्दी लेखों का अंग्रेजी में सार-संक्षेप प्रस्तुत है ।
शुल्क : भारत में ५० रु० ; विदेश में १० डालर

Published by the All India Kashi Raj Trust on behalf of the Maharaja Benares Vidya Mandir Trust and Printed at the Ratna Printing Works, Kamachha, Varanasi.

N. Ramanathan

DHRUPAD ANNUAL 1988

Vol. III

ध्रुपद वार्षिकी १९८८

तृतीयाङ्क (महाशिवरात्रि वि० सं० २०४४)

Maharaja Banaras Vidya Mandir Trust

Contents—अनुक्रमणिका

श्रद्धांजलि

हमारे सम्पादक-मण्डल के माननीय सदस्य डा० हरिहर निवास द्विवेदी एप्रिल १९८७ में दिवंगत हो गए। आप साहित्य, इतिहास, संस्कृति, विधि आदि के मर्मज्ञ विद्वान् थे। आपने सत्तावन ग्रन्थों का प्रणयन अथवा संपादन किया एवं विशेष रूप से ग्वालियर का भारतीय संगीत और संस्कृति में योगदान आपका प्रिय विषय था। इसीलिए ध्रुपद आपके अनुसन्धान, ऊहा और प्रतिपादन का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र-बिन्दु था। अनेक मानद उपाधियों से विभूषित, अनेक पुरस्कारों से मण्डित आपके अनुपम व्यक्तित्व और कृतित्व को ध्रुपद-जगत् की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है।

Homage

Dr. Harihar Niwas Dwivedi, Honorary Member of our Editorial Board passed away at Gwalior in April 1987. He was a profound scholar of Literature, History, Culture, Law etc. He had edited or written 57 works. His favourite subject was the contribution of Gwalior to Indian Music and Culture and thus Dhrupad was an important central point in his research and exposition. We offer our sincere homage to him on behalf of the world of Dhrupad.

•

सम्पादकीय

ध्रुपद वार्षिकी का तीसरा अंक प्रस्तुत है। इसमें कुछ नए ढंग की सामग्री का समावेश है। तानसेन की शबीहों (व्यक्ति चित्रों) पर विचार, म' आरिफुन्नग़मात का ध्रुपदों के स्रोत के रूप में विश्लेषण, काशी की ध्रुपद परंपरा के शिरोमणि पं० वेणी-माधवजी का जीवनवृत्त और चर्चास्तंभ—इनके माध्यम से ध्रुपद वार्षिकी में नए आयाम खुले हैं। पहले दो अंकों में जिन पक्षों पर विचार हुआ है, उन्हीं का विस्तार, ध्रुपद के लक्षण पर पुनर्विचार, ध्रुपद के पदों में प्राप्त संगीत की पारिभाषिक शब्दावली का आकलन और ध्रुपद में चौताल के इतिहास पर विचार—इन दिशाओं में हुआ है अर्थात् ध्रुपद के तालपक्ष और पदपक्ष पर विचार आगे बढ़ा है। आगामी अंक में राग-पक्ष पर विचार किया जाएगा। ध्रुपद की क्षेत्रीय परंपराओं की दिशा में बिहार की परंपरा पर इस बार कुछ नयी सामग्री है। भविष्य में बुंदेलखण्ड, छत्तीसगढ़ आदि की ध्रुपद-परम्परा पर सामग्री जुटाने का प्रयत्न रहेगा। इस प्रकार हम ध्रुपद पर अनुसन्धान के लिए नये उपकरण बनाने और प्राप्त उपकरणों की धार तेज करने में जुटे हैं।

EDITOR'S NOTE

The third number of Dhrupad Annual is being presented. This number opens some new dimensions to research and study of Dhrupad through the evaluation of Tansen's portraits, analysis of M'arifun-naghmat as a source of Dhrupad compositions, life-sketch of Pandit Veni Madhavji, the towering personality of the Dhrupad tradition of Varanasi and discussion forum. The study of the aspects of Dhrupad touched in the first two numbers has been carried forward through the reconsideration of the definition of Dhrupad, assessment of musical terminology found in the Dhrupad song-texts and study of the history of Chautal in Dhrupad, that is to say, research on the Tāla and textual aspect of Dhrupad has been advanced in this number. It will be our effort to present material of the rāga aspect of Dhrupad. So far as the regional traditions of Dhrupad are concerned, this number includes some new material on the Bihar tradition. It will be our effort to present information on the regional traditions of Bundelkhand, Chhattisgarh etc. in future. Thus, we are trying to construct fresh tools for research in Dhrupad and to sharpen available tools.

स्वर सम्राट् तानसेन की शबीहें

प्रो० राय आनन्द कृष्ण

मुगल चित्र-शैली में व्यक्ति-चित्र या 'पोर्ट्रेट' के लिए फारसी शब्द "शबीह" प्रयुक्त होता हैं। अबुल फजल के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ आईन-ए-अकबरी के अनुसार बादशाह अकबर ने स्वयं अपनी तथा अपने काल के प्रमुख व्यक्तियों की शबीहें बनवाईं, जिनसे वे व्यक्ति "अमर" हो गए। इनमें अकबर के कई सभासदों के चित्र मिले हैं, जिनमें आचार्य तानसेन की शबीह भी है।

बहुत समय से तानसेन की शबीह की चर्चा चलती आ रही थी। आचार्य आनन्द कुमारस्वामी ने बोस्टन म्यूजियम ऑफ आर्ट संग्रह के कैटलाग में एक श्यामवर्णीय भारी बदन के बीनकार (वीणा वादक) की शबीह छापी थी जिस पर लेख है : नौबत खाँ बीनकार। परम्परानुसार ये नौबतखाँ तानसेन के जामाता थे। उक्त नौबत खाँ बीनकार की एकल शबीहें कई स्थानों से मिली हैं। एक समय था कि कुछ विद्वान् इसे ही तानसेन की शबीह मानते थे। परन्तु तानसेन के वीणावादन की कोई अनुश्रुति नहीं मिलती है, अतएव यह मत अग्राह्य है।

रामपुर राज्य संग्रह (अब रजा पुस्तकालय, रामपुर) में शाही जुलूस का एक चित्र है। वस्तुतः यह दृश्य दो पृष्ठों में था, इनमें से शाही सवारी वाला पृष्ठ अब उपलब्ध नहीं है, परन्तु उसके सामने वाले पृष्ठ में गायिकाओं का एक समूह है जो उक्त जुलूस के आगे-आगे गाती हुई चली जा रही हैं। इनके साथ पकी मूछों वाला एक कलावंत रवाब जैसा वाद्य बजा रहा है। सुप्रसिद्ध विद्वान् पर्सी ब्राउन ने इस चित्र को प्रकाशित किया एवं उक्त तंत्रकार को तानसेन की संज्ञा दे दी। इसका कोई आधार नहीं हैं—उक्त विद्वान् ने किस प्रमाण को सम्मुख रखकर ऐसा अभिज्ञान किया, इसका पता नहीं। फिर तानसेन का वादक कलाकार होने का प्रश्न बना ही रहा, इस चित्र से उसका समाधान नहीं हो सका। इसके साथ ही एक और प्रश्न भी जुड़ा है : तानसेन का स्वर्गवास अकबर काल में ही हो चुका था। दूसरी ओर रामपुर वाला चित्र जहाँगीर काल (प्रायः १६१५-२० ई०) का है, दृश्य भी जहाँगीर कालीन है। अतः उसमें तानसेन किसी प्रकार भी अंकित नहीं किए जा सकते थे।

राजस्थान के किशनगढ़ राज्य में कई ऐसे चित्र अंकित किए गए, जिनमें सुप्रसिद्ध स्वामी हरिदास के आश्रम में अकबर सहित तानसेन दिखलाए गए हैं। इनमें से एक चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में है। यह दृश्य उस परम्परा पर आधारित है, जिसमें छद्मवेश में अकबर तानसेन के साथ स्वामी जी के आश्रम में गया था। ये चित्र अट्ठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध के हैं, अतः यह शंका स्वाभाविक है कि इनमें तानसेन के

अंकनों को कहाँ तक प्रामाणिक माना जा सकता है। हम नीचे देखेंगे कि यद्यपि इतने लंबे व्यवधान के कारण तानसेन की आकृति में परिवर्तन आ चुका है, फिर भी उसमें आकृति के मूल तत्त्व विद्यमान है।

इनके अतिरिक्त कितनी ही आकृतियाँ तानसेन के नाम पर प्रकाशित होती रहती हैं। उनमें अधिकांश अग्राह्य हैं, अतएव उन पर यहाँ विचार की अपेक्षा नहीं है। इनमें से कुछ डा० हरिहर निवास द्विवेदी जी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ "तानसेन" में चर्चित की हैं, उनके रेखा-चित्र भी प्रकाशित किए हैं (देखिए पृष्ठ १०७-०८)।

प्रायः तीस वर्ष पूर्व सुप्रसिद्ध कला-इतिहास-वेत्ता डा० कार्ल खंडालावाला ने (दे. "ललित कला" त्रैमासिक संयुक्तांक १-२, नई दिल्ली, १९५५-५६, पृ० ११-२१ एवं तत्संबंधी चित्र) तानसेन की शबीहों पर एक लघु निबंध प्रस्तुत किया। इस लेख के आधार-रूप में उन्होंने तानसेन का वह प्रसिद्ध चित्र लिया जो राष्ट्रीय संग्रहालय संग्रह में है। यह अकबर काल (प्रायः १५८० ई०) का प्रामाणिक चित्र है जो संभवतः शाही चित्राधार के लिए प्रस्तुत किया गया होगा। इसके पीछे नागरी लेख है : मीया तानसेन। इसकी एक प्रतिकृति जो १८वीं शती की है प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम, बंबई में है। इसके पीछे की ओर कुछ लेख भी हैं, जिन्हें श्री खंडालावाला ने निम्नलिखित रूपों में पढ़ा :—

(i) फारसी लेख (अ)—शबीह तानसेन कलावंत, (ब)—इसे नहीं पढ़ा, परन्तु यह संभवतः है "नजर ९", इससे यह तात्पर्य निकलता है कि सम्भवतः अन्य चित्रों अथवा मूल्यवान् उपहारों में से यह नौवीं वस्तु है। अंक ९ नागरी वाले लेख में भी है। (स)—अज़ देहली मारफत (ज) महानाथ (यह परवर्ती लेख हो सकता है, महानाथ शब्द स्पष्ट नहीं है।)

(ii)—नागरी लेख (अ)—अंक ९ जिसे विद्वान् लेखक ने नहीं पढ़ा। (ब)—कलावत (= कलावंत) तानसेन, (स)—राग दीपक गायो ते थी मरण पायो।

उपर्युक्त संख्या ii ब वाला लेख सत्रहवीं शती की लिपि में है। राष्ट्रीय संग्रहालय में यह चित्र उदयपुर दरबार से प्राप्त हुआ था। वहाँ चित्रित अनेक चित्रों पर यह लिपि वर्तमान है। संख्या ii स वाले लेख की लिपि अठ्ठारहवीं शती वाली उदयपुरी नागरी में है। संभवतः उसी समय फारसी वाला लेख संख्या i स भी जोड़ा गया, क्योंकि फारसी के पहले लेख से उसकी लिपि की काल-भिन्नता है।

इस लेख को श्री खंडालावाला (उपर्युक्त, पृ० १७) ने इस प्रकार पढ़ा था :—"राग दीपक गायो ते थी मरण पायो" अतः श्री खंडालावाला के निष्कर्ष का सारांश यह था कि दीपक राग गाने से तानसेन की मृत्यु हो गई। लोक में यह किंवदन्ती भी प्रचलित है कि दीपक राग का प्रचलन इसी कारण बंद हुआ था कि तानसेन, उसे गाने के परिणाम-स्वरूप झुलस गए थे।

परन्तु कुछ ही समय बाद स्व० गोपीकृष्ण कानोड़िया ने इस परवर्ती नागरी लेख को ठीक-ठीक पढ़ा (९) राग दीपक गायो तणथी स्याम रंग पायो—अर्थात् तानसेन का श्याम रंग इस कारण था कि उन्होंने दीपक राग गाया था, यह उस मौखिक परम्परा के निकट है जिसके अनुसार दीपक राग गाने से तानसेन झुलस गए थे। स्व० गोपीकृष्ण जी कनौड़िया की एक और भी ऊहा थी कि कभी-कभी वृद्धावस्था में त्वचा पर कहीं-कहीं कालिमा आ जाती है। यह भी सम्भव है कि कुछ ऐसा हुआ हो, इस विषय पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

शैली और कृतित्व की दृष्टि से अकबर-कालीन इस चित्र के परवर्ती होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः इस चित्र द्वारा यह निश्चित हो जाता है कि आचार्य तानसेन का व्यक्तित्व कैसा था। इस चित्र में वे अत्यन्त भावपूर्ण मुद्रा में उपस्थित हुए हैं। वे सम्भवतः ध्रुपद गा रहे हैं और हाथ से ताल भी दे रहे हैं।

यद्यपि अकबर के दरबार के कोई दो दर्जन ऐसे चित्र मिले हैं, जिनमें संगीत भी हो रहा है, परन्तु उनमें एक भी ऐसा नहीं है जिसमें आचार्य तानसेन भी हों। अन्य संभ्रान्त सभासद अवश्य मिलते हैं। एक में उक्त नौबत खाँ बीनकार से भी मिलती-जुलती आकृति है। इससे यह भी सम्भावना होती है कि आचार्य तानसेन संभवतः सामान्य रूप से राजसभा में नहीं गाते थे। बादशाह की अंतरंग मण्डली में गाते रहे होंगे। अन्यथा कोई कारण नहीं कि दरबार के उस तड़क-भड़क वाले वातावरण में, युग के सर्वोत्कृष्ट गायक को दिखलाया न जाय।

अब हम पुनः तानसेन के उपर्युक्त चित्र की ओर प्रवृत्त होते हैं, इसमें तानसेन का वस्त्र-विन्यास परम्परागत है जो अकबर-पूर्व काल से चला रहा था। कुछ उदाहरणों में यह जहाँगीर काल में भी मिलता है पर वे सभी ऐसे व्यक्ति हैं जो परंपरागत केन्द्रों से अकबर के दरबार में आए थे। इस प्रकार चित्रकार ने तानसेन की पूर्व-पीठिका की ओर भी इंगित किया है।

जान पड़ता है कि अकबर-कालीन उक्त चित्र की दूसरी प्रतियाँ परवर्ती चित्रकारों को उपलब्ध थीं। श्री खंडालावाला ने ऐसी दो परवर्ती शबीहों को भी उक्त लेख में, साथ-साथ प्रकाशित किया है। ये चित्र क्रमात् प्रयाग के इलाहाबाद संग्रहालय और बम्बई के प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय में हैं। श्री खंडालावाला ने इन चित्रों को सत्रहवीं शती का माना है, परन्तु आश्चर्य नहीं कि ये अट्ठारहवीं शती के हों। अतः इतने बाद तक भी उक्त परम्परा चल रही थी।

हमने ऊपर किशनगढ़ शैली के दृश्य-चित्र का उल्लेख किया है (इसमें स्वामी हरिदास के आश्रम में तानसेन एवं अकबर बादशाह चित्रित हैं)। इसमें भी तानसेन की आकृति सुदूर अवस्था में अकबरी चित्र से मिल जाती है। यद्यपि काल-भेद और स्वयं किशनगढ़ शैली के प्रभाव में आकृति में काफी परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होते हैं। फिर भी मूल अकबरी चित्र की परंपरा किसी-न-किसी रूप में यहाँ वर्तमान है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि तानसेन के हिंदू अथवा मुस्लिम धर्म-सम्बन्धी ऊहापोह में इन चित्रों या इन पर के लेखों से क्या कोई प्रकाश पड़ता है अथवा नहीं। स्वयं अकबरी चित्र के पीछे (परवर्ती नागरी) लेख में तानसेन के पूर्व मियाँ (= मीया) शब्द मिला है। बम्बई संग्रहालय वाले उपर्युक्त चित्र में उन्हें फारसी तथा नागरी अक्षरों में कलावंत मात्र कहा है। डा० हरिहर निवास जी द्विवेदी अपने उपर्युक्त ग्रन्थ में, इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि तानसेन आजन्म हिन्दू ही रहे और उनकी दृष्टि से ग्वालियर-स्थित उनकी तथाकथित कब्र अस्वीकार्य है। परन्तु परम्परा से यहाँ ज्ञात होता है कि एक न एक स्थिति में, अपने जीवन के परवर्तीकाल में तानसेन ने इस्लाम ग्रहण कर लिया था और ग्वालियर में वे दफनाए गए। इस परंपरा के पीछे कोई निश्चित प्रमाण नहीं है।

प्रस्तुत चित्रों के आधार पर किसी प्रकार का इदमित्थं निष्कर्ष निकालना सम्भव नहीं है। परन्तु श्री खंडालावाला द्वारा प्रकाशित चार चित्रों में से तीन में तानसेन के कान में कुण्डल नहीं है, चौथे बम्बई संग्रह वाले चित्र में कुण्डल है। हम ऊपर देख चुके हैं कि बम्बई वाला उक्त चित्र १८वीं शती का है, अर्थात् तानसेन काल से प्रायः सवा सौ, डेढ़ सौ वर्ष बाद का है। यह भी सम्भावना है कि वह मुगलशैली से प्रभावित किसी प्रान्तीय शैली का चित्र हो।

राजपूत-मुगल काल के चित्रों में हम यह सर्वथा पाते हैं कि प्रत्येक हिन्दू व्यक्ति की शबीह में कानों में कुण्डल अवश्य दिखलाया जाता था। सम्भवतः यह उसकी धार्मिक परम्परा का द्योतक प्रतीक था। यह बात भिन्न हैं कि जहाँगीर काल में स्वयं बादशाह और दरबार के कुछ सम्भ्रान्त मुस्लिम व्यक्तियों के कानों में भी कुण्डल चित्रित किए गए हैं, परन्तु उसका कारण भिन्न था। यह प्रथा उस समय से मुस्लिम वर्ग में चली जब अजमेर में मन्नत मानकर जहाँगीर ने अपने कान छिदवाए और कुण्डल धारण किया, इसके अनुकरण में अनेक मुस्लिम दरबारियों ने भी कान छिदवाए। जहाँगीर काल के बाद यह प्रथा समाप्त हो गई। अतः बिना कान छिदे वाले तानसेन के चित्रों पर इस दृष्टि से भी विचार करना अपेक्षित है।

THE PORTRAITS OF TANSEN THE MONARCH OF MUSIC

Prof. Rai Anand Krishna

(Editor's Summary)

The Persian name for portrait is Shabeeh. Abul Fazal has mentioned in his famous work Ain-e-Akbarl that Akbar had arranged for the making of portraits of himself and the important persons of his time. Out of these, many portraits of Akbar's courtiers have been handed down and the portrait of Tansen is one of them.

Tansen's portrait has been a matter of discussion for quite some time. Anand K. Coomarswamy had published a portrait of a dark coloured heavy-built Beenkar bearing the inscription Naubat Khan Beenkar in the catalogue of the art collection of Boston Museum. According to oral tradition Naubat Khan Beenkar was the son-in-law of Tansen. The portraits of Naubat Khan Beenkar have been found from many places. There was a time when some scholars identified these portraits as those of Tansen. But Tansen is not known to be a performer of Been. Hence the opinion is not acceptable.

The Rampur State Museum, now known as the Raza Library, Rampur, has a painting of a royal procession in its collection. This scene was painted on two sheets, but now the sheet depicting the royal procession is no more available. But the next sheet depicts a group of female singers who are singing and leading a procession. A Kalavanta (musician) with grey moustache is playing an instrument resembling the Rabab as accompaniment for these female singers. The well-known scholar Percy Brown published this painting and identified this instrumentalist as Tansen. The basis of this identification is not at all known. The question whether or not Tansen was an instrumentalist remained as it was and this painting offered no solution. There is another question attached to this painting and that is that Tansen had died during the time of Akbar and the painting deposited in Rampur belongs to the time of Jahangeer (circa 1615-20 A. D.) and Tansen could not be depicted in it.

In Kishangarh State in Rajasthan many paintings were made in which Tansen was depicted along with Akbar in the hermitage of Swami Haridas. This scene is based on the anecdote according to which

Akbar had visited Swamiji's hermitage incognito along with Tansen. These paintings belong to the later half of the 18th century, hence their authenticity is doubtful. As we will observe below, Tansen's appearance has changed during this long interval of time but it does retain the basic features of the earlier portraits.

Apart from the above paintings, many more have been published under the name of Tansen. Most of them are not acceptable and hence they do not deserve to be discussed. Some of them have been discussed by Dr. Hariharniwas Dwivedi in his work on Tansen; he has also given some reproductions (see page 107-08).

The well-known art historian Dr. Karl Khandalwala wrote a short paper on portraits of Tansen, (Lalit Kala quarterly, combined No. 1-2, New Delhi, 1955-56, page 11-21 and the accompanying reproduction of paintings). He based this article on the well-known portait of Tansen deposited in the National Museum, New Delhi. This is the authentic portrait of the time of Akbar (about 1580 A. D.). It bears the inscription of Miya Tansen in Devanagari. A copy of this portrait belonging to the 18th century is deposited in the Prince of Wales Museum, Bomby. It bears some inscriptions at the back. Khandalwala could partially decipher this inscription which is in Persian and devanagari script. According to Khandalwala's deciphering Tansen died because of singing Rāga Dīpaka. The anecdote connecting Tansen's death with the singing of Dīpaka Rāga is quite well-known.

Some time later Shri Gopi Krishna Kanodia succeeded in deciphering the nagari part of this inscription and according to his deciphering Tansen's complexion became black because of his singing of Rāga Dipaka. This interpretation has also the background of the anecdote having the same purport. Shri Kanodia made another conjecture that Tansen might have suffered from disease of old age in which the skin became black and that anecdote conforming to the fact of getting burnt might have come into existence subsequently. It is difficult to say anything on this point for want of evidence.

The above portrait of Akbar's time cannot be ascribed to a later period because of style and workmanship. Hence this portrait does give an idea of Tansen's personality. He has been presented in an emotionally surcharged state, he is probably singing (Dhrupad) and keeping Tal with his hands.

Although about two dozen paintings of Akbar's Court depicting musical scenes have been found, there is not a single one that

includes Tansen. This fact leads to the conjecture that perhaps Tansen did not normally perform in the general Court of Akbar, he must have performed in the private circle of the King. Otherwise, why should the best singer be not depicted in the glamorous atmosphere of the Court ?

Coming back to the above portrait of Tansen, we observe that his dress is traditional, dating back to the times preceding Akbar. Some paintings of the time of Jahangir also depict this dress, but they relate to only those persons who joined Akbar's Court from traditional centres. Thus the painter has also made a hint at the background of Tansen.

It appears that copies of the above portraits made in the time of Akbar were available to later painters. Khandalwala has published two reproductions of later portraits. They are deposted in the Allahabad Museum and Prince of Wales Museum, Bomay. Shri Khandalwala has placed these portraits in the 17th century, but they could even be said to belong to the 18th century and thus the above tradition was alive until so late as that.

We have referred to the scene depicted in the Kishangarh style where Tansen and Akbar are depicted in the hermitage of Swami Haridas. In this painting also the physiogonomy of Tansen resembles that of the portrait of Akbar's time, although the influence of Kishangarh and the distance of time has brought about some changes.

It is very difficult to say whether these paintings or the inscriptions that they bear can offer any evidence for or against the conversion of Tansen to Islam.

It is notable that in 3 out of 4 portraits published by Khandalwala Tansen has no ear-rings, Only the fourth portrait deposited in the Bombay Museum shows earorings. We have already said that this portrait belongs to the 18th century i.e. nearly 150 years after the time of Tansen. It needs to be mentioned here that all Hindus were depicted with ear-rings in the paintings of Rajput and Mughal times. The fact that in the time of Jahangir the King himself and some aristocratic Muslims were also depicted with earrings, has a different background and that is that this custom got established when Jahangir got his ears piecred according to a vow taken at Ajmer and many muslim courtiers followed him. This custom was given up after the time of Jahangir. Thus the portraits of Tansen in which ears are not pierced deserve notice on this account.

विरागी ध्रुपदाचार्य पं० वेणीमाधवजी लाण्डे उर्फ भैयाजी

पं० विनायक रामचन्द्र रटाटे

विश्वनाथ की नगरी काशी में, जहाँ ऋगादि अष्टादश विद्याओं से उनकी वाङ्मय उपासना होती हो, वहाँ गान्धर्व के अन्तर्गत गाये जाने वाले ध्रुपद का भी अस्तित्व स्वाभाविक ही है। काशी में ध्रुपद की परम्परा अनुमानतः दो सौ वर्षों की स्वीकार की जा सकती है। लगभग सौ वर्ष पूर्व से चालीस वर्ष पूर्व तक के काल में रामघाट स्थित सांगवेद विद्यालय के पिछवाड़े वाली गली में भोंसले सरकार के राम-मन्दिर में एक मूर्धन्य ध्रुपदाचार्य से तत्कालीन काशीवासी ही नहीं, अपितु लगभग सम्पूर्ण देश परिचित था। उनका नाम था—पं० वेणीमाधवजी लाण्डे उर्फ भैयाजी। आप अतिशय फक्कड़, अक्खड़, विरक्त तथा परम मनस्वी थे। आप प्रचार-प्रसार तथा व्यावहारिक कुशलता से बहुत दूर भागते थे। फलतः आपके पश्चात् समाज द्वारा आपका विस्मरण स्वाभाविक था। तो भी अभी आप से अन्तिम समय में अत्यल्प शिक्षा प्राप्त किये हुए एक-दो व्यक्ति अवश्य विद्यमान हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि आपकी परम्परा अन्तिम सांस में ही सही, जीवित तो है।*

भैयाजी का मूल वंश संभवतः खानदेश से यहाँ आकर बस गया था। आपके पिता पं० विष्णु बुआ लाण्डे उत्तम कीर्तनकार थे, अर्थात् संगीत से इनका समीप्य था ही। इनका निजी आवास अगस्तकुण्डा महाल में था। उसके बिक जाने पर आप समीप के ही पं० पंचानन पाठक के मकान में रहने लगे, जहाँ पं० वेणीमाधव जी का जन्म हुआ। बाल्यावस्था से ही वेणीमाधव जी को संगीत की रुचि थी, वेद-शास्त्र से आप भागने लगे थे। किसी प्रकार शुक्ल यजुर्वेद संहिता पढ़ ली थी। सही कण्ठस्थ थी। उस समय इसी मुहल्ले के एक दिग्गज ध्रुपदिए परिस्थिति-विशेष में नाटोर स्टेट के आश्रित होकर बालीगंज कलकत्ता जा बसे थे, इसके पूर्व आप बेतिया स्टेट के आश्रम में थे। आप बिदुर समुदाय से सम्बद्ध थे तथा विश्वनाथ बुआ बरहाणपुरकर नाम से प्रसिद्ध थे। आप काशी में पं० विश्वनाथ गुरु औण्ढेकर के यजमान के रूप में रहते थे। आप ऐय्याश प्रकृति के थे। कहते हैं आपने ग्वालियर तथा अन्य बहुत सी रियासतों में अपने ध्रुपद गान से तहलका मचा दिया था किन्तु आपकी मनस्विता कुछ निराले ही प्रकार की थी। कहना न होगा कि उसका प्रभाव परम्परा के अन्तिम पुरुष तक देखा जा रहा है।

---

* प्रो० राय आनन्द कृष्ण भी पं० वेणीमाधवजी के सम्पर्क में पर्याप्त समय तक रहे थे, ऐसा उनसे बातचीत में पता चला। यथासंभव आगामी अंक में उनके संस्मरण देने की इच्छा है। —सम्पादिका

बाल्यावस्था में ही वेणीमाधव जी के मन में विश्वनाथ गुरु से ही ध्रुपद सीखने का निश्चय हो चुका था। किन्तु प्रश्न था कलकत्ता पहुँचने के लिए खर्चा कहाँ से मिलेगा। सुना जाता है कि भैयाजी ने अपनी ध्रुपद सीखने का प्रबल इच्छा की पूर्ति हेतु निषिद्ध कर्म तस्करी को भी चुना और घर के कुछ बर्तन आदि बेचकर कलकत्ता पहुँच गये। वहाँ रंगीन मिजाज विश्वनाथ बुआ की शरण में जाकर हर मूल्य पर ध्रुपद सीखने का निश्चय व्यक्त किया। विश्वनाथ बुआ उस समय आयु के पचास वर्ष डाँक चुके थे और पूर्ण परिपक्व थे अपनी ध्रुपद शैली में। गुरु ने भैया को १२ वर्ष तक सम्पूर्ण दावपेंच के साथ ध्रुपद-धमार की शिक्षा दी और २२वें वर्ष में तैयार होकर भैयाजी काशी में लौट आये। यहाँ आने पर उन्हें जीविका का प्रश्न था जो परमेश्वर की कृपा से हल हो गया। उन्हें भोंसले सरकार के राममन्दिर में रु० १५।– मासिक दक्षिणा पर पुजारी का काम मिल गया। बस अब पूछना ही क्या था। वे प्रातः, मध्याह्न, सांय, पूजा, नैवेद्य, आरती से जब-जब निवृत्त होते तो शेष समय में नादो-पासना में रत हो जाते थे। स्वाध्याय तथा पढाना ये दो ही उनके धर्म बन गये। मूर्ख-विद्वान्, अमीर-गरीब, भला-बुरा कोई भी उनके समीप सत्य भाव से बैठ सकता था। उनकी बैठक सर्वदा सबके लिए खुली रहती थी। वे पूजनादि के समय भी गाना-गवाना अपना कर्तव्य समझते थे।

आपने अनेक शिष्यों को पढ़ाया। आपके प्रथम तथा सर्वविश्रुत शिष्यों में पं० रामचंद्र बुआ भाबे का नाम सर्वाग्रणी है। भावे जी के पिता भी गायक होते हुए उत्तम कीर्तनकार थे। पिताजी के पश्चात् आपने भैयाजी से तालीम ली। पश्चात् आपने भी कलकत्ता पहुँचकर विश्वनाथ बुआ से शिक्षा-ग्रहण की। आप पर गायकी के साथ-साथ गुरुजी को रंगीन-मिजाजी का पूर्ण प्रभाव था। आपने अपनी प्रतिभा से ध्रुपद-धमार के साथ-साथ कण्ठ संगीत की प्रायः समस्त विधाओं में पारंगतता हासिल कर ली थी। आप किसी भी श्रोता को खाली हाथ नहीं जाने देते थे। बिरहा गान को भी आपने नहीं छोड़ा था। आपने भी कलकत्ता में रहकर बहुत मौज की। पारिवारिक स्थिति सामान्य हो चुकी थी। आप असमय में ही ४० वर्ष पूर्व प्लेग से कालकवलित हो गये। कलकत्ता में आज भी कुछ पुराने राजा-रईस आपको स्मरण करते हैं। वहाँ वे भट्ट जी के नाम से प्रसिद्ध थे। आपका एक पुत्र अभी काशी में विद्यमान है। साथ ही अति उत्तम शिष्य श्री सोमनाथ बेहरे भी हैं जो नगर महापालिका से १२ वर्ष पूर्व सेवानिवृत्त हुए हैं। बेहरे जी ने भारत प्रसिद्ध कण्ठे महाराज से तबले का भी विधिवत् अध्ययन किया। बेहरे जी के पास उक्त परम्परा की मँजी हुई ध्रुपद, धमार के अतिरिक्त चैती, घाटो आदि की बन्दिशें हैं। ये भी 'मूडी' मिजाज के व्यक्ति हैं। वर्तमान में आप कुछ विरक्त भाव में आकर नागपुर में रहने लगे हैं।

भैयाजी के द्वितीय प्रिय शिष्य श्री हरि सप्रे थे। इनके पास उत्तम बन्दिशें थीं। साथ ही ये हारमोनियम भी बहुत अच्छी बजाते थे। आपने हारमोनियम बाज श्री गणपतराव फड़के जी से लिया था। ये बहुत अल्पावस्था में ही काल-कवलित हो गये।

तीसरे जानी मठ के श्री ठाकर जी भी ध्रुपदों के जानकार थे। ये भी गत हो गये। श्री नारायण दीक्षित फड़के आपके चतुर्थ शिष्य थे जिनकी आवाज बड़ी सुरीली थी। आप ऋग्वेद शाखाध्यायी भी थे। बलदेव दास बिड़ला के आश्रित थे। १० वर्ष पूर्व ६० वर्ष के होकर गत हुए। आपके कुछ टेप (सांगीतिक) बिड़ला परिवार में सुरक्षित हैं। आपके प्रसिद्ध रईस श्री दाऊ जी (स्वर्गीय), श्री सोमनाथ गणूपकर, वैदिक मूर्धन्य मंगल जी बादल, श्री गोविन्द कण्ठाले प्रभृति और भी अनेक शिष्य हैं। आपके अन्तिम समय में आपके एक भक्त-विशेष पं० वासुदेव शर्मा ने आपकी सपरिवार सेवा-शुश्रूषा की थी। साथ ही कुछ ध्रुपद भी सीखे थे। श्री वासुदेवजी के पुत्र पं० बटुक शर्मा को शैशवावस्था में ही भैयाजी ने ध्रुपद का संस्कार दे दिया था। जिसे बाद में उनके पिता ने पुष्ट किया। पं० बटुक जी वर्तमान में तुलसी मानस मन्दिर में आधिकारिक पद पर हैं। ध्रुपद भी उत्तम गाते हैं। भैया जी के अन्तिम शिष्य ध्रुव जी हैं जो स्वयं गया के सोनी जी की परम्परा से जुड़े हैं। आपके पास अभी-भी भैयाजी की कुछ कठिन चीजें हैं।

भैया जी के साथ पखावज पर संगत करने वालों में क्रमशः पं० मदनमोहन जी, पं० मन्नूजी, श्री वृन्दावन दास जी तथा महन्त अमरनाथ जी प्रभृति थे। भैया जी कलकत्ता, गया, बम्बई आदि अनेक शहरों के अखिल भारतीय स्तर के संगीत सम्मेलनों में भाग ले चुके थे। काशी में आपको कुछ वर्ष तक प्रसिद्ध रईस श्री किशोरी रमण जी आर्थिक सहायता प्रदान कर सम्मान प्रदर्शित करते थे। आपके पास अनेक कठिन रागों को विभिन्न तालों में अनेक बन्दिशें थीं। आपके पास बड़ी कूट चीजें थी। अलग-अलग प्रकार की उठानें, मुखड़ों से युक्त बन्दिशों का आपके पास सागर था। आपके यहाँ प्रति वर्ष चैत्र में रामजन्मोत्सव के अवसर पर छट्ठी का संगीत-मेला बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था जिसमें प्रायः सभी ज्येष्ठ-श्रेष्ठ गायक-वादक अपनी हाजिरी लगाकर अपने को कृतार्थ मानते थे। विद्याधरी देवी, बड़ी मैना, बड़े रामदासजी, छोटे रामदास, बीरू जी, कण्ठे जी प्रभृति सभी लोग कार्यक्रम में आते थे। श्रोतागण भी बड़ी उत्सुकता से उस कार्यक्रम के दिन की प्रतीक्षा करते रहते थे। वास्तव में भैया जी एक बेजोड़ बेमिसाल योगभ्रष्ट गन्धर्व के रूप में यहाँ अवतरित हुए थे। देखा गया है कि जटार मन्दिर में कार्तिक में होने वाले पंचदिवसात्मक संगीत समारोह में सभी गायक-गायिकाएँ, नर्तक तथा वादकगण उन्हें चरण-स्पर्श कर अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करते थे। हम भी यहाँ उस दिव्य विभूति का विनम्र स्मरण कर विराम लेते हैं[1]।

---

१. १०-१२ वर्ष पूर्व कानपुर से प्रकाशित होने वाले "आज" में आपसे सम्बद्ध एक विस्तृत लेख प्रकाशित होचुका है।

DISINTERESTED MASTER OF DHRUPAD : VENI MADHAV LANDE ALIAS BHAIYAJI

Vinayak Ramchandra Ratate
(Editor's Summary)

The tradition of Dhrupad in Varanasi could be surmised to date back to 200 years. One master of Dhrupad who lived in the Ram Mandir of Bhonsale State situated in the lane at the back of Sangaveda Vidyalaya for about 60 years until 40 years ago, was well known not only in Varanasi but almost in the whole country. His name was Pt. Veni Madhav Lande Alias Bhaiyaji. He was far away from practical ways of life, was exceedingly disinterested and immensely self-respectful. Hence it was but natural that he was forgotten by society after his death. All the same, one or two persons who had received a little training from his last days are still alive.

The ancestors of Bhaiyaji had probably migrated from Khandesh. His father Pt. Vishnu Bua Lande was an excellent performer of the kīrtana of Maharashtra. Veni Madhav Ji had a deep interest in music since his childhood and he was not interested in Vedic studies. During that period a great Dhrupad singer of the same neighbourhood had migrated to Calcutta. Vishwanath Bua while living in Kashi was a yajmān of Pt. Vishwanath Guru Aundekar. He was an accomplished scholar and was known as Vishwanath Buā belonging to the Burhanpurkar family. He led a life of luxury and it is said that he had rocked the states like Gwalior and many others by his Dhrupad singing.

Veni Madhav Ji had made up his mind in his very childhood to learn Dhrupad from Vishwanath Buā. But his problem was to collect enough money for reaching Calcutta. In order to achieve his objective he stole a few pots from the house and sold them. After reaching Calcutta he expressed to Vishwanath Buā his indomitable wish to learn Dhrupad. Vishwanath Buā had crossed the age of 50 at that time and he was fully matured as a musician. He trained Bhaiyaji in the intricacies of Dhrupad-Dhamar for 12 years and Bhaiyaji returned to Varanasi in his 22nd year as an accomplished musician. His problem of earning a livelihood was solved as he was appointed Pujari in the Ram Mandir on a salary of Rs. 15/- per-month. Now he was free to continue his singing which was the love of his life. Practising and teaching music was his sole avocation. He did not mind singing or teaching even while performing puja.

Bhaiyaji taught many students. His first and best known disciple was Pt. Ramchandra Buva Bhave who also hailed from a family of Kirtan performers. After receiving training from Bhaiyaji he also went to Calcutta and learnt from Vishwanath Guru. He had attained proficiency in several forms in addition to Dhrupad. He could even perform Viraha, the narrative-cum-recitative-cum-musical form. He died an untimely death 40 years ago on account of plague. Some old aristocrats of Calcu tta cherish his memories even today. A son of his is still alive in Varanasi and an accomplished disciple of his known as Shri Somanath Behre, who also learnt Tabla from the renowned Kanthe Maharaj, recently migrated to Nagpur. Behreji has a precious repertoire of Dhrupad Dhamar, Chaiti, Ghato etc. of this tradition.

Bhaiyaji's second favourite disciple was Shri Hari Sapre. He also had a rich repertoire of compositions and was an excellent harmonium player. He died at a very young age. His third disciple was Shri Thakurji of Jani Math. Shri Narayan Dixit Khadge was his fourth pupil; he had a very musical voice and was also trained in Rigveda. He was patronized by Baldevdas Birla and died at the age of 60, 10 years ago. Some tape recordings of his music ere in the possession of the Birla family. He had many more pupils like the well known aristocrat Shri Devji, Shri Somanath Gankar, the veteran vedic scholar Mangalji Bādal, Shri Govind Kantale and many others. Pt. Vasudeo Sharma, a devote of his served him in his last days. He also learnt a few Dhrupad compositions from Bhaiyaji. Pt. Batuk Sharma, the son of Vasudevji was intiated into Dhrupad in his very childhood, by Bhaiyaji. He is presently attached to the Tulasi Manasa Mandir. The last pupil of Bhaiyaji was Shri Dhruvaji who is also attached to the tradition of Soniji of Gaya.

Pt. Madan Mohan Ji, Pt. Mannuji, Shri Vrindavan Dasji and Mahant Amarnathiji, are some of the renowned Pakhavaj players who participated in many all India Music Conference in Calcutta, Gaya, Bombay etc. The well-known aristocrat Shri Kishori Raman patroni zed Shri Bhaiyaji for some years.' His rich repertoire of compositions was comprised of songs in various Talas with different points of beginning in the Tāla-cycles. He used to organize a big annual festival in Chaitra, celebrating Rama Janmotsava. All senior musicians used to feel honoured by participating in this festival. Some of the names are Vidyadhari, Bari Mana, Bari Ramdasji, Beeruji, Kantheji. It was a long awaited occasion for all listeners. Thus Bhaiyaji was an exceptionally accomplished Dhrupad musician.

ध्रुपद के पदों में संगीत की पारिभाषिक शब्दावली[1]

प्रेमलता शर्मा

भूमिका

भारतीय ज्ञान-परंपरा और कला-परम्परा मुख्यतया वाचिक है। उसमें 'शास्त्र' और 'सम्प्रदाय' परस्पर पूरक रहे हैं। ध्रुपद के पद 'सम्प्रदाय' के अन्तर्गत आते हैं, क्योंकि गुरु-शिष्य-परंपरा द्वारा उनका संरक्षण और संक्रमण होता रहा है। सतही दृष्टि से 'शास्त्र' को लिखित और 'संप्रदाय' को वाचिक धारा का वाहक कहा जा सकता है। किन्तु यह बात सीमित रूप में ही समीचीन मानी जाएगी, क्योंकि लिखित और वाचिक धाराएँ परस्पर इतनी धुली-मिली हैं कि उन्हें सर्वथा स्वतंत्र या पृथक् मानना असंभव है। शास्त्र भी गुरु-शिष्य परंपरा या सम्प्रदाय द्वारा ही संरक्षित और संवर्धित होता है और सम्प्रदाय के मूल में भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शास्त्र का आधार रहता ही है।

ज्ञान की निबद्ध धारा को 'शास्त्र' कहा जा सकता है और अनिबद्ध धारा को 'संप्रदाय' कह सकते हैं। जिस प्रकार संगीत में अनिबद्ध और निबद्ध परस्पर पूरक होते हैं, क्योंकि निबद्ध के ही आकार-प्रकार के आधार पर अनिबद्ध का ताना-बाना बुना जाता है और निबद्ध भी अनिबद्ध द्वारा प्रभावित होता रहता है, उसी प्रकार ज्ञान के क्षेत्र में भी निबद्ध या शास्त्रगत लक्षण और अनिबद्ध या संप्रदायगत लक्ष्य और लक्षण का परस्पर प्रभाव और एक का दूसरे में अनुप्रवेश सहज गति से हुआ करता है।

संप्रदाय का जो लक्षण कल्लिनाथ ने किया है, तदनुसार वह शास्त्र का पूरक और धारक है। यथा—

शास्त्रानुक्तस्यापि शास्त्रेणाभ्यनुज्ञातस्य शास्त्राविरोधिनोऽर्थविशेषस्य आचार्य-शिष्यपरम्परया यदुपदेशप्रदानं स संप्रदाय इत्येतल्लक्षणलक्षितत्वात्। तथा चोक्तम्—

> यो यत्सम्यग्विजानीते स यद्वदति तत्त्वतः।
> स संप्रदायः कथितो विष्णुना लोकजिष्णुना ॥
> यत्र कुत्रचिदाख्याता संस्थितिश्चानुपूर्वतः।
> स संप्रदायः कथितो यथा स्वर्णविभूषणे ॥

(संगीतरत्नाकर ७.९१, कल्लिनाथ की टीका)

---

१. इस लेख के लिए तानसेन के पद अनूप संगीत रत्नाकर, अनूप सगीत विलास, रामपुर राग माला, (तीनों पाण्डुलिपि में) से संकलित करके डा॰ फ्रांस्वाज़ देल्बुआ ने दिए हैं, उनका यह योगदान साभार स्वीकृत है। उन्होंने अनेक पदों के विभिन्न प्रकाशित स्रोतों से पाठ-भेद भी संकलित कर के दिए हैं। किन्तु उनका उपयोग यहाँ नहीं किया जा सका है।

अर्थात् (१)—शास्त्र में अनुल्लिखित किन्तु शास्त्र द्वारा अभ्यनुज्ञात और शास्त्र के अविरुद्ध जिस ज्ञान का गुरु-शिष्य-परम्परा द्वारा "उपदेश" (शिक्षण) दिया जाता है, वह संप्रदाय है।

(२)—जो जिस बात को सम्यक् जानता है, उसे वह जिस प्रकार तात्त्विक दृष्टि से कहता है यानी जैसा है वैसा कहता है, उसे लोकजिष्णु विष्णु द्वारा "संप्रदाय" कहा गया है।

(३)—(शास्त्र में) जो कुछ (बिखरे हुए ढंग से) जहाँ-तहाँ कहा गया है, उसे "आनुपूर्वी" (क्रमबद्ध रूप) में रखना 'संप्रदाय' है, जैसे कि स्वर्ण को विभूषणों में (सुष्ठु रूप दे कर) रखा जाता है। (अर्थात् शास्त्र में बिखरे हुए ज्ञान को गुरु-शिष्य-परम्परा में सुन्दर रीति से सँजोकर रखा जाता है।)

ध्रुपद के पदों में संगीत की पारिभाषिक शब्दावली किस रूप में मिलती है, इस अध्ययन से पहले तो यह पता चल सकेगा कि संगीत-शास्त्र का "संप्रदाय" में कितना और कैसा प्रवेश है। इतना ही प्रस्तुत लेख का प्रयोजन है। इस अध्ययन का दूसरा चरण यह हो सकता है कि 'संप्रदाय' ने शास्त्र को किसी हद तक प्रभावित किया है या नहीं। किन्तु वह अभी हमारे प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य नहीं है।

ध्रुपद वार्षिकी द्वितीय अंक में डा० फ्रांस्वाज देल्वोआ "नलिनी" के लेख "ध्रुपद के पद-पक्ष के समीक्षात्मक अध्ययन की सामग्री के स्रोत" में ध्रुपद-संग्रहों में प्रथम, द्वितीय स्थान क्रमशः किताबे-नौरस और सहसरस को दिया गया है। इन दोनों संकलनों में मौलिक अन्तर यह है कि किताबे-नौरस आज मौलिक परंपरा में बिल्कुल जीवित नहीं है। सहसरस का संकलन शाहजहाँ के काल में यानी मूल रचना के प्रायः डेढ़ सौ वर्ष बाद मौखिक परम्परा से हुआ था। तृतीय स्थान भावभट्ट के ग्रन्थों अनूप संगीत रत्नाकर और अनूप संगीत विलास के अप्रकाशित अंशों को दिया गया है। चौथा स्थान रामपुर रागमाला का है। मुख्यतया इन्हीं चार स्रोतों के आधार पर हम ध्रुपद के पदों में प्राप्त पारिभाषिक शब्दावली का अध्ययन करेंगे।

किताबे नौरस

इसमें संकलित ५९ पदों में से केवल १६ पद ऐसे हैं जो हमारे प्रस्तुत अध्ययन के लिए प्रासंगिक हैं।

१–पद संख्या ३, पृ० ९७।

दर मुकाम रामक्रि नौरस

रामक्रि बना आयो सेज संग्राम चित चाह्यो
चोंप चली चंचल चपला।

अन्तरा

सखियाँ संगत सुन्दरी हँसत खेलत छाड
पीतरम आनुकही ठगला।

अभोग

मगुता भूषन भूषिता सीत रक्ताम्बर चटक छबेला
इबराहीम रामक्रि रागिनी कस्तूरी श्याम
सुकेश कैसे धम्मिला ॥

इस पद में रामक्रि का ध्यान है। राग-ध्यान और रागचित्रण-परंपरा के इतिहास में दक्खन का अपना स्थान है और इसलिए कि. नौ. के रागध्यान-परक पदों का ऐतिहासिक महत्त्व है।

२–पद संख्या ५, पृ० ९८

दर मुकाम भैरव नौरस
भैरव करपूर गौरा भाल तिलक चन्दरा
त्रिनेत्रा जटा मुकुट गंगाधरा
एक हस्त रुँड नरा तृसूल जुगल करा
बाहन बलीवर्द सेत जात गुसाई ईश्वरा
कास कुरूत कुंज पृष्ठ चरम व्यागरा

अभोग

सरप सिंगार टिष्ठन परछाई कल्पतरा
रमनी वादन मृदंग धाम कैलास तदुपरा
ब्राहीम उक्खत लच्छन राग भैरव महा उत्तिम सुन्दरा।

यह भी राग ध्यान का उत्तम उदाहरण है।

३–पद संख्या ७, पृ० १००

दर मुकाम भैरव नौरस
नवरस गाओ गीतं गुनि जन गुन गज पती
जय जय जियो आतश खां सदा मस्त हती

बैन

आपीं पारदी हुआ बहुत चतुर शाना
घन्ट नाद सुना जन किया दिवाना
अब दीपक होना सो तुज नाऊं आतश खाना

बैन

धन्य धरित्री दमामां दायम धरे हाता
नित खुश्याँ अलोल बजावे भुंइ पर मारे दांता
बाजे फतेह नुसरत अतीत अनघाता

अभोग

सोंच उचावे नफीरी बजावे जग रिझावे दील
इबराहीम अंबर लोक अप पराई राखें मील
यो गज नॉऊ तुल क्यों साजे इसराफील

इस पद में घण्टा, दमामां, नफीरी के वाद्य-नाम और अतीत अनघात (अनागत) ये ताल ग्रह-भेद के नाम हैं। नाद शब्द घण्टे के साथ जुड़ा है, जो कि उसकी अनुरणन-बहुलता का द्योतक है।

४—पद-संख्या ८, पृ० १०१

दर मुकाम भैरव नौरस
मुख गोरा फटिक तिलक छाये अधर
तिलक अक्षता सो ईस्वर अगिन नेतर

बैन

तिलक चन्दन बीच अक्षता
मंडल समुद्र मध्य मेरु पर्वता
यो उपमां यो मन लागे निस पति लच्छन धरता

अभोग

उपमां आकहूं भाल तिलक जगत्तर
कौं कनक कसे कसौटी कर
इबराहीम हेम परिचित तारिका मधुथ पर ॥

भैरव का ध्यानपरक यह दूसरा पद है।

५—पद संख्या ११, पृ० १०३

दर मुकाम हजीज़ नौरस
जम जम जियो बड़ी साहब अप पूत सीस पर
जब लग उभरम उसुमती निसपति दिनकर

बैन

भाग बुलंद दिन दिन सदा जोति मंगल
करो खुश्यां जसन गीत तन्त ताल मंदल
राजा भोगो आनन्द सों जुग जुग भू मंडल

अभोग

मन सागर दान मगुंता चकरंग जग पुर सरस
सय्यद मुहम्मद पीर मदत यो रोशनाई दरस
इबराहीम पाया उत्तम मनसा नारी नवरस।

यहाँ गीत, तन्त (तन्त्री-वाद्य), ताल, मंदल (मर्दल) ये शब्द पारिभाषिक हैं, जिनमें से दो वाद्य-नाम हैं।

६—पद संख्या १५, पृ० १०५

दर मुकाम आसावरी नौरस
मोती खां सागर उपमां पुर
तापर तन्त कलोल लहु गुरु—

यहाँ तन्त (तन्त्री या तत वाद्य) और लहु (लघु)-गुरु ये तीन ही पारिभाषिक शब्द हैं।

७—पद संख्या १९, पृ० १०७

दर मुकाम तोडी नौरस
संघाती संघात सब सहेलियां संग
करें पीरत केरयां बाजियां झोंट धरनी जंग
उत्तिम बहुगुन गावें नवरस आहंग
तम्बूरा रबाब जन्तर कमाच चंग
ढोलक डफ हुडुग ताल ब्रिदंग
शनाई पावा नय खालू उपंग—

यहाँ तम्बूरा, रबाब, जन्तर (त्रितंत्री वीणा ?)* कमाच (कमंचा नामक गज से बजने वाला तंत्री वाद्य), चंग, ढोलक, डफ, हुडुग (हुडुक्का), ताल (मंजीरा), ब्रिदग (मृदंग), शनाई, पावा (छोटी बांसुरी-नुमा लोक-वाद्य), नय (नाई, सुषिर वाद्य), खालू (?) और उपंग इतने वाद्य-नाम हैं।

८—पद संख्या २४, पृ० १०९

दर मुकाम मलार नौरस
गनपति मूरत हस्त मेघ मद बरखत पानी
दन्त दामिनी घन्ट घोर घोर गोर मंडान भाल बिधुबानी

अभोग

सुरसुती पवित्र स्वांति घन जल कैसे जिया जानो
इबराहीन नवरस मगुता निकसत या कारन नहिचें मानी

यह भी मेघ-राग का ध्यान-परक पद है।

९—पद संख्या २५, पृ० १०९

दर मुकाम मलार नौरस
सोभा देत हैं रे मेघ घाम जैसें मेघ राग असावरी समेत
भई अनन्द कर

* संगीतरत्नाकर ६.११० पर त्रितंत्री वीणा के प्रसंग में कल्लिनाथ ने टीका में कहा है कि लोक में इसी को "जन्त्र" कहा जाता है।

अन्तरा

फुने ऐसें लागत दुर्गा दर्शन देखत मानो सूर पसिजत
लज्जा सकुचनि कम्पत थर थर

अभोग

बहुर कंचन थाल मोतिया भर इन्द्र पठायो नैछावर
बार डारेव बानी पर
इबराहीम अकहें यो समयूरस बरन बिराजत रजत
छीट केसरी बस्तर

यह भी मेघ राग के ध्यान का उत्तम उदाहरण है।

१०—पद संख्या २६, पृ० ११०

दर मुकाम मलार नौरस

उपमां सुन्दरी सोहे सुद सदा बरसत
बिजल्यां झमके जगा जोत सों बीतत दांत

बैन

किसवत रंग रंग दिसे ज्यों बादल
छाये बरसे मेघ सो खोये जल

बैन

सब तन केस रुख परकार
सरस जानी रुत आई बार

अभोग

गरजे सो तू कहे राग मलार
इबराहीम मोर रीझ नाचे पुकार

यह भी मेघ या मलार राग का ही ध्यान है।

११—पद संख्या २७, पृ० ११०

दर मुकाम मलार नौरस

झनन झनन झन मोती खाँ की ताँत गाजे
ताला बृदंग भेद सों नवरस बाजे

बैन

इस जग में दो कुछ लीजे
एक तम्बूरा एक कामिनी कीजे

अभोग

इबराहीम जब तूँ बूझे
तब बिहिश्त अमृत क्या करूँ मुझे

इस पद में ताँत (तन्त्री), ताल, (मंजीरा अथवा काल-मान), बृदंग (मृदंग) और तम्बूरा ये वाद्य-नाम हैं।

१२—पद-संख्या २९, पृ० १११

दर मुकाम गौरी नौरस
जात बरहामनो अंखडया कामिनी

बैन

अंजन जानवा नयन देती
पलखाँ पिताम्बर बांद लेती
आँझू जल झलक कीति
जप कर दीष्ट ईश्वर पारबती

अभोग

पुस्तक छच्छू सो सुन्दरी
खत काजर कागद पांडरी
पलखाँ जिल्द जोड़ बादेरी
इबराहीम पुतरी मूरत देव महादेरी

यह गौरी रागिणी का ध्यान है।

१३—पद संख्या ३६, पृ० ११४

दर मुकाम कनड़ा नौरस
करनाटी गौरी मानो केतकी बीच सेत पतर

अन्तरा

सारी नीली कंचुकी पीली कुमुद कमल नेतर

अभोग

कोयल कूके क्रीड़ा करत वसन्ती मूले कल्पतर
इबराहीम मनाये बिरहे घेरी अब आयें लाल कुछ न डर

यह करनाटी रागिणी का ध्यान है।

१४—पद संख्या ४१, पृ० ११७

दर मुकाम कनड़ा नौरस
बुलन्द महल सप्त खन सप्त दिन की मूरत सोपान
कीनी घड़ियाल की ऊधम कर

अन्तरा

सप्त उडगन सप्त खन की दीपक नहिचैं
कर और सर्व नछत्तर भये आरती नैछावर

अभोग

सप्त खन सप्त स्वर वानी बनाये अमर और कोट
माँज मानो पारस कीनो दिनकर
इबराहीम मुल्के जहाँ राग रागिनी सूरत नवरस
धुनि सुनि मुरझनां भई अबछरा इनदर

इस पद में केवल घड़ियाल (घंटा), सप्त स्वर और राग-रागिनी-सूरत यानि ध्यान यही पारिभाषिक शब्द हैं।

१५—पद संख्या ४५, पृ० ११९

दर मुकाम कनड़ा नौरस
हस्त तुम्हें करतार रखे पनाह
जब लग नाद सरबन वचन रसनाह
अब्बल उमर तेरी सूरज सो माह

यहाँ केवल नाद सरबन (श्रवण) पारिभाषिक है॥

पद सं० ४६, पृ० १२०

दर मुकाम कनड़ा नौरस
अताई धाड़ी गुनीजन त्रिजन गोसाई तिरलोचन
भाका न्यारी न्यारी भाव एक कहा तुर्क कहा बरहामन
उत्तिम भाग लीको सो सोहे जा सुरसती होये परसन
इबराहीम संसार चाहे बिद्या
सबदगुरु सेवा जप कर एक मन

इस पद के आरम्भ में जो तीन शब्द हैं—अताई, धाड़ी और गुनीजन, ये संगीत विद्या के क्रमशः उत्तरोत्तर उत्कर्ष के सूचक जान पड़ते हैं।

१६—पद संख्या ५०, पृ० १२२

दर मुकाम कनड़ा नौरस
श्री सरस्वती सृष्टी नवरस कांस
हा हा हू हू त्रीलोक चाये

अन्तरा

पाषान सगरे पग लाये वनचर चोप धुनि
सुनि रीझ आये धाये

अभोग

इबराहीम गाय बजाय परचंग (ड) जगतगुरु नाद
मूरत खिताब पाये
दया कधूँ कहा करूँ कोर मन सों वाकों कारी
आँख न भाये

इसमें हाहा-हूहू गन्धर्वों के नाम, नाद-मूरत (मूर्ति) उपाधि, ये दो ही शब्द स्वल्प रूप से पारिभाषिक की सीमा में आ सकते हैं।

ऊपर उद्धृत १६ पदों में से आठ पद राग-ध्यान-परक हैं। रामक्रि, भैरव (दो पदों में) मेघ (मलार, तीन पदों में), गौरी और करनाटी इस प्रकार, पाँच रागों के ध्यान आठ पदों में हैं। ये पद दक्खन की तत्कालीन क्षेत्रीय प्रवृत्ति के प्रमाण के रूप में अमूल्य हैं। तुलनात्मक दृष्टि से यह उल्लेखनीय है कि कि० नौ० से प्रायः पचास वर्ष पूर्व ग्वालियर में रचित बख्शू के पदों (जिनका संकलन कि० नौ० से प्रायः सौ वर्ष बाद दिल्ली में शाहजहाँ के दरबार में हुआ) में राग-ध्यान को कहीं स्थान नहीं है। यहाँ तक कि रागिणी संज्ञा भी उसमें प्रायः नहीं है। (केवल दो पदों में यह संज्ञा मिली हैं।) यह स्मरणीय है कि रागध्यान और राग-रागिणी-वर्गीकरण दोनों एक दूसरे पर अवलम्बित हैं।

पारिभाषिक शब्दों में वाद्यों के नाम, राग-रागिणी, नाद, ताल, ताल के ग्रह अतीत और अनागत इतने ही प्रमुख हैं। ग्राम, मूर्च्छना, आलाप, तान आदि का अभाव ध्यान देने योग्य है।

पदों में आए पारिभाषिक शब्दों के साथ-साथ प्रत्येक पद पर राग का नाम अंकित करने की पद्धति भी कि० नौ० में विशिष्ट प्रकार की है। इस विशिष्टता के निम्नलिखित पक्ष हैं :—

१— राग के स्थान पर "मुकाम" शब्द हैं और प्रत्येक मुकाम के नाम के बाद 'नौरस' अंकित है। नौरस (नवरस) के लिए इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय की विशेष प्रीति इतिहास-प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने सर्वश्रेष्ठ हाथी, महल, खजाने, रत्न आदि का नाम नौरस ही रखा था।

२— "भैरव" को प्रथम राग मानने की तत्कालीन परंपरा, जो कि "सहसरस" में भी गृहीत है, का यहाँ पालन नहीं हुआ है। यहाँ सबसे पहले "भूपाली" को रखा गया है।

३— कुल राग १७ हैं, जिनमें पद-संख्या इस प्रकार है।

राग नाम	पद संख्या	राग नाम	पद संख्या
१. भूपाली	२	२. रामक्रि	२
३. भैरव	६	४. हजीज	१
५. मारू	२	६. असावरी	२
७. देशी	१	८. पोरबा	१
९. बराड़ी	१	१०. तोड़ी	४
११. मलार	५	१२. गौरी	२
१३. कल्यान	४	१४. धनासरी	२
१५. कनड़ा	१९	१६. केदारा	४
१७. नौरोज	१		
कुल			५९

राग के स्थान पर "मुकाम" शब्द का प्रयोग गंभीर रूप से विचारणीय है, क्योंकि अभी तक हम लोग "मुकाम" को "मेल" या "संस्थान" के ही समकक्ष रखकर देखते रहे हैं।

गीत के खण्डों के लिए जो पारिभाषिक नाम कि. नौ. में प्रयुक्त हुए हैं, वे भी विचारणीय हैं। इस प्रसंग में निम्नलिखित तथ्य ध्यान देने योग्य हैं:—

१— पद के प्रथम खण्ड के लिए "ध्रुव" या "स्थायी" या अन्य किसी संज्ञा का प्रयोग नहीं है।

२— द्वितीय खण्ड के लिए "अन्तरा" शब्द है और अन्तिम खण्ड के लिए "अभोग" (आभोग), किन्तु जहाँ प्रथम और अन्तिम खण्ड के बीच एक से अधिक खण्ड हैं, वहाँ "वैन" (वचन) शब्द का प्रयोग है। कहीं कहीं सीधे प्रथम खण्ड के बाद ही "अभोग" है।

३— कई पदों से पहले "दोहरा" दिया गया है, जिसका छन्द दोहे के निकट है। यहाँ "दोहरा" पद के लिए उपयुक्त भूमिका प्रस्तुत करता होगा या उद्ग्राह-स्थानीय होगा, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

अनुप्रास की दृष्टि से कि. नौ. के पदों की विशेषता यह है कि प्रत्येक खण्ड के पादों में अन्त्यानुप्रास है। बहुत कम पदों में सभी खण्डों के पादों का अन्त्यानुप्रास एक-सा है। इस प्रकार प्रत्येक खण्ड अनुप्रास की दृष्टि से प्रायः स्वतंत्र है। किन्तु सहसरस में, भावभट्ट के ग्रन्थों और रामपुर रागमाला में संकलित पदों में भी गीत के चारों खण्डों में अन्त्यानुप्रास है और प्रायः एक-एक खण्ड के भीतर विदारियों में अनुप्रास नहीं है। यह अन्तर भी ध्रुपद के पद के गठन की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

सहसरस

जिस प्रकार कि. नौ. की प्रमुख विशेषता रागध्यान-परक पद हैं, उसी प्रकार सहसरस की प्रमुख विशेषता है, भरत, मतंग जैसे आचार्यों का नामोल्लेख और संगीत-रत्नाकर अथवा उसी के नामान्तर "सप्ताध्यायी" का पुनः-पुनः उल्लेख। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि राजा मानसिंह तोमर की सभा में भरत, मतंग के नाम सुपरिचित थे और संगीतरत्नाकर की चर्चा काफ़ी होती होगी। इन उल्लेखों वाले पद नीचे उद्धृत हैं, प्रत्येक पद पर क्रमिक संख्या दी गई है।

१ भरत, मतंग, संगीतरत्नाकर अथवा सप्ताध्यायी के उल्लेखयुक्त पद

विद्या उत्तम सोई जो साहजहाँ के मनमानी।
सप्तध्याये ग्रन्थ में, जे कही ते भिन भिन जानी॥
तुम पचि पचि साधो गुनी मधुर बस्ती तानी॥
नेम परसि सोच समझ रीझौ सुर ग्यानी॥ १११॥

तेरें आगे गुनियन पै सीख्यौई भूल जाई।
शाहजहाँ की सौं या में कहत न बनाई ॥
गीत, बाद, निरत कों, तू ही पूरन सप्तध्यायी।
रसकशिरोमन साहजहाँ प्यारो तेहि राख्यौ रिझाई ॥ १३१ ॥

एरी सुघर, सुघरन मनि तूँ गायन अत (सत)।
सपतध्याय बिद्या लाछ लछन, गावत संगत सतत ॥ १८८ ॥

मतंग भरत पाँच कहत साँच, तू निरी बात बनान।
जैसी बूझ तोसों बूझी री कोऊ,
तासों तूँ तैसी कहत माई, वे हैं स्यान ॥
तेरी गायन विद्या की सरवर कर को सकै री,
तूँ पूरन समस्त ग्यान ॥
मेट मिटें (?) जितवार जिन जीते
साहजहाँ के आगे, गुनियन समूह निदान ॥ ३४० ॥

............पढ़ि रत्नाकर संगीत के परमान ग्यान ॥ ३८३ ॥

बिहग बोलई न री माई, रह धौं चुपाई।
तेरे मेरे गुन कौ रो माई, साहजहाँ देहै न्याई ॥
कंठ बाजि बर दौर देहान कीजै री, कहा गयौ साधे हों सपतध्याई ॥
साहजहाँ आगे पूछूँगी विद्या को, तब तू जैहै री खिसियाई ॥४००॥

हौं कैसे कै रिझाऊँ हो लाल, तम सकल कला परबीन।
न आदिकाव (व्य) उक्त अच्छर बन्धान, तुम सुरज्ञान हौं अग्यान
मति छीन ॥
सप्तअध्याय के ब्योरे नीकें के बखानत हो और जानत ग्राम तीन ॥
खट दरसन को निवास चिरंजीव रहो साहजहाँ राग लीन ॥४७९॥

सबहीं ते अत विचित्र, पात्र की निकाई।
और तियान सम केसे पावैं आद-ओवाई ॥
भरत संगीत अरथ गुन ज्ञान कों, सरसुती सोइ सोइ पढ़ाई ॥
साहजहाँ कें और नांहीं तो सी कोऊ याई तें रीझ लगाई ॥६८४॥

बिद्या सोई खरी, जो होय संगीत प्रमान।
चार बेद, खट शास्तर प्रकार इन भेदन को जान ॥
सप्तध्याय परिपूरन नृत, तार, गीत, राग अछर सुध उनंचास तान ॥
या बिबेकहि करन साहजहाँ पिय जो है सुरज्ञान ॥७७५॥

सतत स्रवन साध रंजक नीकें गायई ।
भरत मत संगत बिचार गीत, छंद, ध्रुब, ध्रुपद, काब अगत बनायई ।।
ताल क्रम को कोवाड़ भेद अतीत अनागत सम मिलायई ।।
सब विध जानत साहजहाँ, ताके आगे झूठी बातन में कहा पायई ।।७८४।।
भरत संगीत जानत ही कहा करे बापुरो कवि ।। (तुक ३) ।। ८२९ ।।

(शेष तुकों में संगीत की कोई बात नहीं है)

ऐसे लडा गायन तिहारें ।
सप्ताध्यायी के अंग अंग गुनियन समझावत नीकें के न्यारे ।
देसी, राग, उपराग कवाड भेद लै संचत मन गारें ।।
सब बिध पूरे अंग गहि राखे साहजहाँ प्यारे ।। ९४८ ।।
गायन सुघराई जाकों सब गुनी 'अपा-अपा' करत
तार मूल अक्षर, सुर तार बंधान सो कंठ धरत ।
सप्तध्यायी निपुन री माई, तातें तोसों कोउ अरत ।।
इहँविध जानि साहजहाँ तो कों रीझ अंकुवन भरत ।। ९५८ ।।

संगीत-विद्या की कसौटी के रूप में या उसके चरम उत्कर्ष के प्रतीक के रूप में सप्ताध्यायी या संगीत रत्नाकर का उल्लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भरत, मतंग के नामोल्लेख तो और भी विस्मयकारी हैं।

२— स्वर-सम्बन्धी उल्लेख

"स्वर" के अन्तर्गत श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, शुद्ध तान, कूटतान और उससे जुड़ा हुआ नष्ट-उद्दिष्ट, शुद्ध-विकृत स्वर, गमक, चार वर्ण आदि अनेक विषय समाविष्ट हैं। जिन पदों को इस शीर्षक में हम रख रहे हैं, उनमें कभी-कभी ताल, वाद्य या नृत्य की बात भी थोड़ी-बहुत आ गयी है, किन्तु प्रमुखता के आधार पर ही पदों का चयन करना पड़ा है।

संकेत कर साहजहाँ पूछत हैं, जैसोई करम ।
एक तें बिबि, त्रइ, चतुर, पंच, खट, सपत पंचमवेद
जैसो कहोई परम ।।
ताको ब्योरो बब कहत जो बीस बिसा सौं, सपत बीस,
पंच सहस चालीस कर कंठ सरम ।।
सहनसाह या बिबुध लोक में जानिपन्यो को राज धरम ।। २३ ।।

यहाँ स्वर प्रस्तार की विधि प्रस्तुत है। पाँच, छह, सात स्वरों के क्रमशः १२०, ७२० और ५०४० प्रस्तरों की संख्या गिनाई गई है।

प्रथम तार सुर साध सोई गुनी जो सुध मुद्रा बानी गावै ।
द्रुत मध्य विलंबित कर दिखावै ।।
तीन ग्राम सपत सुर, इकीस मूर्छना, बाईस सुरत को भेद पावै ।
सरसुती प्रसन्न होई जाकौ सोई साहजहाँ के स्रवनन कों रिझावै ।। ६५ ।।

मूर्छना चतुर्दस को भेद खट पंचासत, करम पंचसत चतुर सप्तत ।
पुनि सुध तान चतुरसीति सुनावहु सहत संगत ॥
साहजहाँ जान आगें पूछहुँ कूटतानन की संख्या तब आखर
एही विद्या सकत ॥
इन अंगन जो रिझावे ताहि दै दान मान, साह सागरपत ॥ ८२ ॥

दो ग्रामों की चौदह मूर्छना और उनके चतुर्विधत्व (शुद्धा, सान्तरा, सकाकली सकाकल्यन्तरा) से उत्पन्न १४×४=५६ भेद, "क्रम" जो कि कूटतानों के वे भेद हैं, जिनमें व्युत्क्रम नहीं होता, बल्कि जिनमें सीधे क्रम में स्वर रहते हैं, जिनकी संख्या कल्लिनाथ ने सं० र० प्रथम खण्ड में पृ० १२६-२८ पर ५७४ बताई है, फिर शुद्ध तान जो दो ग्रामों में से निर्दिष्ट स्वरों के वर्जन से बने मूर्छनाओं के षाडव-औडव प्रकार हैं, जिनकी संख्या नाट्यशास्त्र से लेकर ८४ ही मानी गई है, ये तीनों यहाँ गिनाये गये हैं।

अरी ई जैसन गायो करत सप्त सुरन के परमान ।
ताल काल करया (किरया) लै अंग अतीत अनागत समान ॥
औडव खाडव संपूरन सुध-कूटतान ॥
इन अंगन को जान जोई, साहजहाँ सकल गुन निधान ॥ १०२ ॥

पूंछत तोहि गुन की ताको तू मोहि उतर दै ।
निनी सुरतई बरनभेद तै ॥
ताल काल किरयाई, बब ग्रामन में कौन राग कहियत सो तूं लै ।
साहजहाँ के आगे बिसेख कर दिखाओं, तो बिद्याधर को
भेद निरत पंचम मै ॥ १०६ ॥

बरन भेद = स्थायी आदि चार वर्ण । बब = दो ।
ता पाछें करम सों गिन गिन अच्छर, धरो प्रथम नाद की,
अतीत विचार करो गुनी ।
सरगम पदमन, सुरत बाईस, बादी चार[1]
इकोस मूर्छना, तीन ग्राम, ता मध गावत गुनी गंधर्व
गन्धार मुनी ॥
औडव षाडव संपूरन पूरब अपूरब प्रौढ़ बिस्तार मग
रस गुन रूप, जोई बतावैं सोई जान निपुनी ॥
नशट उदिशट संख्या कर दिखावै, ताल काल ग्रह की
अंग, कला, मारग, देसी, वहि जानें चुनी,
साहजहाँ परबीन पैं सीखी सुनी ॥ ५९ ॥

१. चार वादी का तात्पर्य वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी स्वरों से हो सकता है। स्वरमेरु अर्थात् स्वर-प्रस्तार के नष्टोद्दिष्ट के लिए निर्मित खण्डमेरु। नष्ट-कूटतान की संख्या ज्ञात हो किन्तु रूप अज्ञात हो। उद्दिष्ट = कूटतान का रूप ज्ञात हो, किन्तु संख्या अज्ञात हो।

निखाद हस्ती कहियत, सो सुनो तुम गुनी कंठ तान ।
खरज मोर, पिक पंचम, धैवत हैंवर (हयवर) जान ॥
रिखब बिरखब, गंधार अजा, मद्धम क्रौंच परमान ।
कली अन्तर कली काकली, ते सब समझत साहजहाँ सुरज्ञान ॥ ७० ॥

सातों स्वरों के उच्चारक प्राणियों का परम्परा-प्राप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है ।

नाद गायन जे गुनियन गावत बजावत हैं, तिनहीं जाने सुर-सुरत ।
दूजें सुक्रत गति, विक्रत गति अई (?) भेद कहो अति जो होइ न परत ।
पुनह सप्त सुर, सुरन कहन कठिन है मूर्छना
तिन में लै दिखावहु जी जरत (जे जुरत ॥
संग मद्धम-सा को साहजहाँ रीझें, ऐसन कू कौन सुरसती फुरत ॥ २६० ॥

सुक्रत = शुद्ध । पुहन = पुनः ।
तो सम नाहीं आन विद्या राई, गुन परमान साध तैं जान्यो ।
बाईस सुरत सुर (सुध) द्वादस बिक्रत, ताल लै नाद बखान्यो ॥
ताल बिताल, और अनताल भेदन सौं सान्यो ॥
इहँ विध रिझवत साहजहाँ पिय कों, तें तोई सों मन मान्यो ॥ २७९ ॥

संगीत रत्नाकर के द्वादश विक्रत स्वरों का उल्लेख ध्यान देने योग्य है ।

कहत अंग त्रैभेद जान ।
सुर लाप बरन तारतर अस्थान सुरज्ञान ॥
द्वादस विक्रत औड़व खाड़व सम्पूरन सुध कूट तान ॥
इन अंग को जानि साहजहान ॥ ३६३ ॥

परमान आद अन्त ग्रन्थ समझ जान विद्या नाद धुनी ।
सप्तक के नष्ट उदिष्ट सुरमेर लाछ लच्छन कर दिखावे सोई गुनी ॥
खोडस भेदन के मांत्रा ओंकार को भेद उपजै, सो तू कही सुनी ॥
इहँ बिसेख करन प्यारो साहजहाँ खट दसा सहंस,
रूप नृत अध्याय निपुनी ॥ ३७७ ॥

धात, मात, ग्राम, गमक, सुर तार ।
सुध कूट तातें मूर्छना की एई प्रकार ॥
ब्रह्म-ग्रन्थ[1] परान अगन संजोग धुनि उपजत नाद, अपर, पनार (?) ।
यह बिसेख जानत साहजहाँ छत्रपति, जोई साहब सेनसार ॥ ३७८ ॥

---

१. अग्नि की प्रेरणा के कारण ब्रह्म-ग्रन्थि से प्राण की ऊपर की ओर गति, जो कि सं० र० (१.३.३,४) में वर्णित है, उसी का यहाँ संकेत है ।

धात = धातु (गेय), मात = मातु (वाक् या पद)
नाद मूल जानत लाल परबीन।
तीन ग्रामन को ब्योरो सो जाने जो धरे कर बीन।
औडव-षाडव ते होंहि उनंचास जब सपत सुर।
करिहैं साहजहाँ स्रक-सुर, पुन दिखाओ चार तीन ॥ ३७९ ॥

तीन ग्रामों का रहस्य जानने के लिए वीणा की अनिवार्यता का संकेत ध्यान देने योग्य है।

साहजहाँ प्यारे तुम्हारे गायन सुन साधन लागी गायन तें थान ठौर।
आरोही अवरोही अस्थाई संचाई रंजक सुरन गायन मौर ॥ ५३२ ॥

तें तो विद्या साधी री माई, नीके कर देखत गुनी करन गहे कान।
देसी मुद्रा को मरम तू ही पाइयत है सब विधन की जानत है परमान ॥
खरज, रिखब, गन्धार, मध्यम, पंचम धैवत निषाद तो पैं
उपजत सुद्ध कूटतान ॥
इन अंगन को जान साहजहाँ सुरग्यान ॥ ६२८ ॥

तोहि आवत है तू (तो) कह री, नांतर सुन ले संगीत मत।
सुध सालंक संकीरन को भेद, लडा समझावत रूप-सहत ॥
औडव खाडव संपूरन मन मन के लहत ॥
इन अंगन रिझे पे साहजहाँ और तिया छबि गुन सों दहत ॥ ६४६ ॥

शुद्ध, सालग (छायालग) और सङ्कीर्ण रागों से तात्पर्य जान पड़ता है।

सुरग्यान बिचित्र प्यारे को बिसेख तुम नीकें जानत।
यातें गुनी तार अच्छर सुर संध बानत ॥
................................सङ्ग असङ्गत पहचानत ॥
साहजहाँ सुजान गुननिधान सभी कान गहि मानत ॥ ६८५ ॥

सुर स्रुति ग्राम राग भेद जानी।
पुनि तिनकी लाछ लछन परमानी ॥
जो सङ्गीत निपुन होय तो सुध विकृत बानी ॥
सकल कला परिपूरन साहजहाँ मनमानी ॥ ७५२ ॥

अय चतुरदस बादी सो वादी तेरो जस जे गाई।
जा सो आसिक साहजहाँ सूरत पाक निकाई ॥
तुम तो देखो धौ गुनी जन, साह के मिलन की
गंधार ग्राम को बीन मंगाई ॥
इंह भरोसें अलोप भये, सुपत गई बानी,
बचन सो आई ॥ ७७४ ॥

गान्धार-ग्राम की रहस्यात्मकता का संकेत जान पड़ता है।

जैसे संगीत कर लच्छन कह्यौ, तैसें करहु ग्रह अलाप गायन
लछ साधैं।
जो मग सूझे तो आवे गरन आराधैं ॥
सुध बिकृत उनीस, गमक सोरह कंठ सों, लीजै हितन को
साहजहाँ महाजानि आगे निबेरइ या गुन की पाधैं (९)
उपाधैं ॥ ८०७ ॥

सात शुद्ध और बारह विकृत स्वर मिला कर उन्नीस संख्या कही है। सं० र० में कहे १५ गमक भेदों के स्थान पर सोलह गमक भेद यहाँ कहे हैं।

सुरत संचि निकाई री गनि तेरो होत है हीन।
............हैं जानत नाहीं परबीन ॥
बाईस जो गुनी कहें अंग लई न।
संगीत सागर सरीर में ग्यान तरंग कलोल करत भयो मीन ॥ ८०८ ॥

का करत कहा नहीं सरसरत क्यों जानई।
चार सुरत खरज कहई सो अनसुने क्यों मानई।
देखी सुनी दिस्टांत देखी तेरे साहजहाँ गुनगाहक,
तेरी अस्तुत देवलोकहूँ करत कथा नई ॥
जा कों गुनिजन करें आदेस सबहों अंग जान
सो विधि सो मुद्रा, सो बानई ॥ ८२० ॥

षड्ज की चार श्रुतियों का विशेषोल्लेख है।

धा स्रुति, सा स्रुति, मा स्रुति पंचम चल गान करन जायन
नारद भूलोक महिमान एक जान।
खरज ग्राम तो पैं बनि आवै, पूछूंगी तुमही अई सुरग्यान ॥
सुध सालक संकीरन भेद उपजें, जा में न होय पुनि रिक्तान ॥
पूछेगो सुरस राखि जो पत विविध जान साहजहाँ सुलतान ॥ ८२८ ॥

अई री, तो पै याते कत छेर रही जो तार बिस्तार
आहि न दैनन या सो लागें।
लै खरी (घरी) कठिन बहु न बिचारई साहजहाँ आगें ॥
अरथ मुखराग खनावत कहिए तान रागें ॥
निगम अगम अस्थायी संचायी पायई रंग पागें ॥ ८५४ ॥

आदि सुर सपत, ग्राम तीन, इकीस मूर्छना समझ के
गाव सुध बानी।
प्रस्तार रूप नशट उदिशट, खण्डमेरु न परी जानी ॥

द्वादस खट चतुर भेद गुन गन्धर्व प्रबीन, स्रुति-मंडल
चित आनी ॥
सुध कूट तान साहजहाँ ताहि को रिझवे जा
परसाद भवानी ॥ ९३४ ॥

कहत गुनी पै समझत नाहीं, राग को परमान।
ति थान कौन कौन पच जात, चार अंग भेद कहो आन ॥
द्रुत मध बिलम्बित औडव, खाडव कूट तान।
या परभूता तें रिझओं साहजहाँ को, तो बिदौं गान ॥ ९३७ ॥

३. ताल-सम्बन्धी उल्लेख

ताल-सम्बन्धी उल्लेखों में मार्ग और देशी दोनों पद्धतियों का संकेत मिलता है, क्योंकि एक ओर सशब्द, निःशब्द क्रिया का और चच्चत्पुट ताल का अष्टमात्रिक रूप में उल्लेख है, जो कि मार्ग-पद्धति का द्योतक है और दूसरी ओर द्रुत अनुद्रुत जैसे अंगों का उल्लेख है जो कि देशी पद्धति में ही मान्य है। सम, अतीत, अनागत ग्रह, ताल की पाँच गति या जाति, ब्रह्मताल आदि के उल्लेख नीचे संकलित पदों में हैं।

चतरंज अंक, ताको ब्यौरो पूछत, कोटिहि रूप धुवा रच्यौ।
निरत अंग में देखे धौं विचार, कौन सब्द कौन निसब्द के बज्यौ ॥
ताल अध्याय के प्रस्तार को पंदरी (?) नज्यौ (नच्यौ)।
साहजहाँ के आगें इन अंगन को ब्यौरो कहे सोई संच्यौ ॥ ५९ ॥

सशब्द, निःशब्द क्रिया का उल्लेख ध्यान देने योग्य हैं।

जो न हौं तो सों कहत, तौ तू मेरे तार को भेद क्यों जान।
कै तू माई, कलत (गलत ?) करि कै अवर उरजाओगी
तो मोहि करोगी मान ॥
सम, अतीत, अनागत याई में सब गुरचरन सनमुख के
राखऊ ध्यान ॥
साहजहाँ जान के आगें साँच क्यों न बोलहि छाड़ि स्थान ॥ ३२३ ॥

तीनों ग्रह—सम, अतीत, अनागत उल्लिखित हैं।

तेरीं सुनी एक भली बात, तातें गुनी आवैं तेरे दरसन चातर।
एक पायन सब्द हाथ धौं तार बाज, या नैन चचपुट अष्टमातर ॥
अंग अंग सुरेख सुरूप जन्तर गातर ॥
साहजहाँ के टोडरमल साचे जपा-पातर ॥ ३२६ ॥

चच्चत्पुट को अष्टमात्रिक कहा है, जो कि ठीक ही है वैसे मार्ग-ताल-पद्धति में इसे चार गुरु (कला) से युक्त कहा है। किन्तु 'देशी' में 'कला' का स्थान मात्रा ने ले लिया है—इसीलिए चार 'कला' न कहकर आठ मात्रा कहा है। पाँच मार्ग तालों में से यह प्रथम ताल है।

देखी अंग बहुत भांत रंग, तेरे ही पैं सोई चलत है ।
गत लागी समाई ॥
सम, अतीत, अनागत भेद नीको, तार पखावज हूँ ते लै पाई ॥
इहँ विध जिन साहजहाँ रीझे ओर जे गुनी गनका पात्र राई ॥
तिनके मुँह मलिन भए, पहले से न देखी इहँ आई, तिन चाई ॥ ३३३ ॥

जैसें दुरत, लघु, गुरु, प्लुत, नाच्यो गायो बजायो
अनुद्रुत को हूँ गन बान्यो ।
जैसें पुरानन ऊपर लख बिध गुन जान्यो ॥
ऐसो साहजहाँ पिया बूझ जान जैसो ग्रन्थ बखान्यो ॥
जेइ जेइ आग्रह प्यारे के भांवर तिहँ चाहिए पछान्यो ॥ ३३७ ॥

सुधि किन लई, कहूँ कहूँ भूलत है कित ।
तू जो करडोलि सिखाई ब्रह्मताल में मिलाई चित ।
तार गत पंच मानत, दच्छिन बाम,
याई तें साहजहाँ करेगो तेरी अरत ॥
ये लै तेरी ऐसी परिमान न लहैं गत, बुधि परी अत ॥ ४२३ ॥

ब्रह्मताल का उल्लेख ध्यान देने योग्य है । ताल की पाँच गति कह कर त्र्यश्र, चतुरश्र, खण्ड, मिश्र और संकीर्ण इन चार जातियों का संकेत किया जान पड़ता है ।

तेरे अंग अंग के बरन मों पै क्यों कहै परैं री गुसायन ।
तेरो गुन मोपे कछू जीभहूँ न कहैं बनै, तूँ अरथपात्र गढ़ि गायन ॥
सम सम हूँ, अतीत अतीत हूँ बिसम अगनित अनागत, सुगत पायन ॥
साहजहाँ के मन रंजनि कौ तूं (तो) पर दायन ॥६१३॥

४—नृत्य-सम्बन्धी उल्लेख

जिन पदों में नृत्य का उल्लेख है, उनमें आए पारिभाषिक शब्द प्रमुख रूप से देशी हैं, संस्कृत शब्द बहुत हो कम हैं। अकल, उरप, तिरप, तेवट, भंवरी, तपाक, आवडी आदि इसके उदाहरण हैं। रंगभूमि, अभिनौ (अभिनय), पुहुप-अंजरी (पुष्पांजलि), चौरस (चतुरश्र) लास, तण्डु, संस्कृत परम्परा के शब्द हैं, जो किंचित् अपभ्रंश रूप में आए हैं।

तों राखी हिरदैं धरकन कर रंगराई ।
उरप सब्द तेवट भेद तेरे आगें और पैं क्यों आवै तिरप बँधाई ।
अकत बनै पट निपट निकट जानी अंग-अंग सुरझाई ।
साहजहाँ सुजान के बहु मोहिबे को तोहि आवत है दाई ल्हाई ॥२८॥

उरप-तिरप—संगीत रत्नाकर में नृत्य से सम्बन्धित देशी करणों में ७ प्रकार की भ्रमरी कही गई है, जिनमें से एक "तिरिप भ्रमरी" भी है। (सं० र० खण्ड ४, पृ० २४८-२५०)। सम्भव है यहीं से 'तिरिप' शब्द ले लिया गया है। 'उरप':शब्द शास्त्र में कहीं भी उल्लिखित नहीं है। संभवतः 'तिरिप' के सादृश्य पर बना लिया गया हो। यदि इस शब्द का कोइ विशेष अर्थ हो भी तो वह नृत्य से सम्बद्ध होना चाहिए, क्योंकि "उरप" हमेशा "तिरप" नृत्य सम्बन्धी शब्द है। तेवट (त्रिवट) : मृदंग अथवा तबले के पाटों (बोलों) के आधार पर रचित गीत या प्रबन्ध की वाचक संज्ञा है, ऐसा आज मौखिक परंपरा से ज्ञात होता है। यहाँ उसी से तात्पर्य है या और कुछ यह कहना कठिन है। यह शब्द अन्य कई पदों में भी आया है। इसी अंक में आदिनाथ उपाध्याय के लेख में 'तुहफात-उल-हिन्द' के अनुसार 'तेवट' का ध्रुपद का एक प्रकार-विशेष कहा गया है।

रेख सुरेख परमान सहित सो लेत है नारी।
प्रथम चौरस बैठ गत लीनी, पाछें "पुहुप" अंजरी डारी॥
लाग डाँट मान सब्दन सों रिझायौ प्यारो,
ताकी भंवरी ब्राजौं धरी तिहारी॥
या बिध को जानि परबीन मनहारी॥१८१॥

'लाग-डाँट' तो आज स्वरोच्चार या गमन-प्रकार के रूप में ही परिचित है। नृत्य के प्रसंग में यह प्रयुक्त नहीं होता। संभव है यहाँ भी स्वर के 'लगाव' के लिए ही यह प्रयुक्त हुआ हो। इस शब्द की न तो कोई प्रमाणिक व्याख्या उपलब्ध है, न कोई सर्वमान्य स्पष्ट अर्थ। सामान्य तर्क से इसका अर्थ यह समझा जा सकता है कि 'लाग' यानि लगाव अर्थात् मुख्य स्वर पर पहुँचने की रीति। उदाहरण के लिए 'स' लगाते समय 'प' को छूकर 'स' पर पहुँचा जाए, तो यह पहुँचने की पद्धति 'लाग' होगी और 'स' पर रुकने की क्रिया 'डाँट' इसलिए लाग-डाँट का अर्थ यह होगा किसी स्वर को लगाकर उस पर रुकना।

सो गति किन लई जो परी सम मान।
रस-सहित भेद ज्यों उपजे नकमान (न गुमान)।
या बिध को जान, सब अंग सुजान, प्यारो जाके आगे
अतेत लछन मान॥
जो यह बिध समझे ताकों साहजहाँ कइ मान॥३०६॥

रंगभूम में आवत री भाई, तब भूल जात सब तियन की मति।
लाग-डाँट, उरप तिरप, हरमई (?) जति।
इन अंगन तू पूरी री आली, ताते साहजहाँ रीझति॥३७३॥

और नाचे सो जो ताल काल क्रिया हि जाने पारि।
सो कत काछ बांधि है, अनत पखावन अनत पाये गत पतारि॥

5

अजहूँ पूछ देखी साहजहाँ जो जानत है यह जंजारि ॥
मो सों जिन सीख करो, मैं तो दर बांध्यो रंगराई,
सो कहा बिना बिचारि ॥ ५५९ ॥

निरत कर राख्यो निरत अङ्ग परोजा देसी सुगन्ध को।
तेरेई संचन सों तिरप तच्छन छूटे न्यारो न्यारो
माय अंग परतंग को ॥
तपाक, आवडी, लास, तण्डु तेरो रंगभूम में राखन रंग को ॥
रिझायो साहजहाँ महाजन, महाजन जो जानि है
भरत मतंग को ॥ ६४१ ॥

भरत मतंग का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है।

तूं री लास ताण्डवी खटमुंह ही निरत देखें गति
अनत की अनत ॥
जोई (सोई) अङ्ग आवे वे कही ग्रन्थ गनत ॥
जो अभिनौ दिखाबे तो भावे, जे रस स्वाद नैनन सुख सनत ॥
धन ताको लहनो जाको निरत देख रीझे साहजहाँ
भाई री जाको कहनो ताई बनत ॥ ६८२ ॥

लास तांडव निरत गावत सुगन्ध देरी परमान।
उरप-तिरप लाग-डाँट हिरमई (?) तरसंज (तलसंच) मान ॥
तोई कों सरसती प्रसन्न भई सौंपी बिद्या कर अपमान ॥
माई ते साहजहान सकल तियन में राखत तेराई मान ॥ ९२३ ॥

तूं जो गति ले चली सबन में पात्र राई धन।
लास ताण्डव के भेद मिलवती हो, उरप सुर तार,
समान मन ॥ ९३१ ॥

५—प्रबन्ध और ध्रुपद सम्बन्धी उल्लेख

कई पदों में "ध्रुपद" संज्ञा आई है और कई में "प्रबन्ध"-विषयक शब्दावली है। इन पदों में स्वर सम्बन्धी अन्य शब्द भी हैं, किन्तु ध्रुपद या प्रबन्ध-सम्बन्धी उल्लेखों के कारण इन्हें हमने स्वतन्त्र वर्ग में रखना उचित माना है।

पीतम साहजहाँ को सोई ध्रुपद करे।
धातु-मातु गुन-अगुन, रस-बिरस सम्यौ संगत बिचार धरे।
चार अंग, तीन ग्राम, औडव खाडव, सप्तत सुर साध के संचोती सो धरे ॥
चार अंग तीन ग्राम, औडव खाडव, सपत सुर साध के संचोती सो भरे ॥
जहाँ जहाँ जुरें गुनियन के बहुत समूह तहाँ गुन ग्यान की लराई लरे ॥८०॥

"चार अंग का तात्पर्य अस्पष्ट है। प्रबन्ध के छह अंग (पद-तेन, पाट-विरुद्ध, स्वर-ताल) में से चार तो अभिप्रेत नहीं हो सकते। शायद चार धातु (उद्ग्राह मेलापक, ध्रुव, आभोग) से तात्पर्य हो।

या तें साधन लागे ध्रुपद गुनी जे बिध उनकी आहि ।। ३८१ ।।

तो कूं ध्रुपद करत प्यारे, साहजहाँ पिय न बन आवै काहू पैं साँची तुक ।
और सिख देत समझ न परत, पिया जिय में लागत चिहुक ।।
सेन गुनी संगीत सम, करिहैं तेरे सकल कला बिद्या की धुक ।।
आद अन्त होई में संचारी, कहा भयौ, काहू पै न बनै ठौर एक दुक ।।३२४।।

कहा लौ अस्तुत करौं तेरी, सबन में देखी तू ही बिद्या राई ।
गीत, छन्द, ध्रुव, ध्रुपद, सबद, तिव (र?)वट के भेद
उत्तम ते सब तोही में पाई ।।
नाद मूरत कंठ बसी आई ।। ३८२ ।।

ध्रुव (ध्रुवा) को ध्रुपद से स्वतन्त्र रखा गया है जो ठीक ही है । नाट्यशास्त्र की ध्रुवा से तात्पर्य हो सकता है और ध्रुपद उससे सर्वथा स्वतन्त्र ही है । पुराने गायक शायद इसी को "ध्रुवा" कहते थे ।

बिद्यान बिसेख ज्ञान, जानन मन जान जगत परम गुरु ।
तीन ग्राम, बिधि पंच, इकीस मूर्छना, उनचास कूट सान सपत सुर ।।
गीत, छन्द, ध्रुव, ध्रुपद, जोई पैं, भनिजै जो ग्यान उर ।।
साहजहाँ करन गुरु-जानी बात धुर ।। ३९१ ।।

ध्रुपद नाँचत गत बहुत और तरंग उपजैं बार-बार ।
कत (गत) ना संभारी, मान पाई बहुत भाँतन के तार-तार ।।
जो तूं कहत है सो तो बनत नाहीं, लै कुलट कर रहीं, सब बार-बार ।।
साहजहाँ की सौं बनत अब नाहीं, आपन तौ पान-पान मेर
डार-डार ।। ७२१ ।।

तैं जो बाँधी डांड़ी प्रबीन अचंग राइ गुनियन बर ।
कंठ सुदेस, तान बंधान, गीत, छंद, "ध्रुव"—ध्रुपद,बैनान सो हितकर ।।
कुआड़ भेद जंजार मिलवत अज्ञान आकर ।
तोसी भई और न दूजी साहजहाँ की पिरोजा विद्याबर ।। ९९३ ।।

"डाँड़ी बाँधने का संकेत शायद चतुर्दण्डी (आलाप, ठाय, गीत, प्रबन्ध) की ओर हो ।

परबन्ध अध्याय को तूहीं री जानत समझाई ।
आनन्दनी, पावनी, दीपानी, तारावली मेदनी कर दिखावत है बनाई ।।
तब हीं रिझावत हैं साह कौं री, जब ही उठत है गाई ।।
साहजहाँ को रिझाए की भाई, तै ही पाई है दाई ।। १८५ ।।

प्रबन्धों की पाँच जातियाँ उनमें प्रयुक्त अंगों की संख्या के अनुसार बनती हैं । ६,५,४,३,२, अंगों वाले प्रबन्धों की क्रमशः मेदिनी, आनन्दिनी, दीपनी, भावनी तथा तारावली ये पाँच जातियाँ सं० र० (४.१९गघ, २०क) में कही गयी है । यहाँ थोड़ा सा क्रम भंग हो गया है और भावनी के स्थान पर पावनी है ।

अति मति प्रबीन पात्र चातुर राई, बिद्या सोई जो तुम पे आई।
गीत, छंद, प्रबन्ध, ध्रुव, ध्रुपद, तार सम परन पाई।
उरप तिरप लाग हरमई (?) सो तियन री लै दिखाई॥
इन गुन रिझाये बस कीने साहजहाँ लाल सुखदाई॥ ९५६॥

६—राग-रागिणी-सम्बन्धी उल्लेख

राग-रागिणी का उल्लेख केवल दो पदों में है, वे दोनों यहाँ उद्धृत हैं। कुल ५० रागों में पदों का संकलन हुआ है और शीर्षक देते समय कहीं-कहीं राग संज्ञा का प्रयोग तो हुआ है, किन्तु रागिणी का कहीं नहीं। पचास रागों के नाम और प्रत्येक की पद-संख्या नीचे की तालिका में है :—

राग नाम	पद संख्या	राग नाम	पद संख्या
१—भैरौं (भैरव) राग	३०	२६—नट	१०
२—मालकौंस राग	५	२७—गौड़	२०
३—हिंडोल राग	१५	२८—माधमाद	१६
४—सिरीराग (श्रीराग)	४०	२९—सावंन्त	१०
५—विभास	१५	३०—सारंग	३०
६—देसकार	२५	३१—गौड़ सारंग	५
७—रामकली	२०	३२—मारवा	३०
८—गूजरी	३१	३३—पूर्वी	७
९—राग देसारव	१०	३४—गौरी	१६
१०—बिलावल	१८	३५—त्रवन	१५
११—अलैया	५	३६—कामोद	२१
१२—सूहो	२५	३७—भूपाली	५०
१३—सुधराई	१२	३८—कल्यान	४५
१४—पंचम	१०	३९—हमीर कल्यान	१५
१५—गंधार	१६	४०—जैत कल्यान	१०
१६—खटराग	१५	४१—एमन कल्यान	५
१७—पूरीया	१२	४२—स्याम कल्यान	१२
१८—गुनकलि	१५	४३—छायानट	१५
१९—तोड़ी	४०	४४—कानरा	१०२
२०—देसी	१०	४५—अडाना	३५
२१—धनासिरी	७	४६—संकराभरन	७
२२—मालसिरी	२०	४७—जयजयवंती	१५
२३—जैतश्री	१४	४८—केदारा	५०
२४—आसवारी	३०	४९—एमन केदारा	७
२५—मल्हार	१८	५०—बिहागड़ा	७

कि० नौ० की भाँति यहाँ भी "कानड़ा" में पदों की संख्या सर्वाधिक है। "राग" संज्ञा का प्रयोग केबल प्रथम चार और सातवें नामों के साथ हुआ है। प्रथम चारों-रागिणी-पद्धति के ६ प्रमुख रागों में से हैं।

कंठ कलत कर राग रागनी माई।
जो बिद्याधर हो, यही तो तेरी बड़ाई ॥
प्यारो अत बिचित्र ताके आगैं मुख बात कह री, गुन समूहताई।
साहजहाँ तो पर जो मया करिहैं सदाई ॥ १६२ ॥

सकल कला प्रबीन रास राग लीन।
और औड़व संपूरन राग रागनी सुर ग्राम तीन।
कृपा सागर साहजहाँ गुनी भये रहत हैं मीन ॥
पुनि मोचन दुःख दालिद्दर कोनो हीन ॥ ७५३ ॥

७—फुटकर उल्लेखों वाले पद

फुटकर खाते में गुण की परीक्षा, ताल-प्रस्तार, धातु-मातु, वाद्य नाम (पद ३८५), नाद, संगीत शास्त्र (पद ६३५) आदि उल्लेख है। वाद्य-नामों का उल्लेख केवल प्रमुख रूप से एक ही पद में आया है, यद्यपि पखावज और बीन का तो यत्र-तत्र दो चार बार उल्लेख हुआ है।

आवत जे बिद्याधर सकल बिद्यान के तुमहूँ पै सीखन परपाटी।
तुम तेन (तिहँ) सुर-ग्यानिन बुध जान,
तुम गुन की कस कसौटी ठाटी ॥
जे कहे लाछ-लच्छन संगीत, अंग गायन बाद निरत और मुद्रा करनाटी ॥
सकल कला संपूरन जान साहजहाँ लाल जिहँ दी बिद्या
बुधि-धन, दलिद्दर गत काटी ॥ ११२ ॥

कर्णाटी मुद्रा का उल्लेख रोचक है।

आद सुर, ताल द्वितीय, तृतीय बाद, चतुर नृत, साधो गुनि गायन।
प्रथम तर्लस्पिज (नामितल + स्पंद) हैं अस्थाई, बजाई करो मध
अंदुलित, न्यास, गमकभेद, उनचास तान परमान, तब बेग
पुनि सान ठायन ॥
अनंब (भं) जन, बं(भं) जन, बिराम, बंजन, रहस (ह्रस)
दोर्घ और प्लुत, एइ सप्त प्रकार प्रस्तार करो इन भायन ॥
बीज अच्छर बाद की, बादी बजावै, चार अंग निरत ध्याय
की नाचै नृत, गाये, तब रीझौ साहजहाँ रहस चायन ॥

इस पद में गीत, ताल, वाद्य, नृत्य का क्रमशः पहला, दूसरा और तोसरा स्थान, स्थायी वर्ण, आन्दोलित (गमक ?), तान, ठाय (स्थाय) आदि के बाद ताल-

प्रस्तार की बात है। कई प्रकरण मिले जुले होने के कारण इसे फुटकर में डालना उचित लगा।

तासौं कहा कहे कोउ, जो मतंग (?) के बिध पहचाने।
जो जैसें साधै तो साँचे, जुगत कर मुख सच न माने ॥
सुध सालंग संकीरन के भेद, लड़ाई जाने ॥
याई ते साहजहाँ लीने रिझाई, गल रंजक ताने ॥ १७९ ॥

रति कों ऐसी पति के मन ही तलब।
अगनित अत मत 'प्रबोध तरंग' अंग कलब ॥
न सुर कर सकैं निरत, नट-नट गुनी, काट तिनके गरब ॥
साहजहाँ साहब तन-तरनि-धरन, धरो जैसी गायन गन्धरब ॥ २७६ ॥

जैसो तेरो जानपनो कहियत, तैंसो नैनन देखो।
तार अछर सुध मुद्रा बानी, मिलावत उपज अलेखो ॥ ३१२ ॥

देखी मैं परम सुन्दर, सुनते कहा पूछइ, जो बिद्याभरी।
कंठ सुध मुद्रा साच्छर अनूप, धातु मातु कर बानी खरी ॥
गुन निकाई कूँ उदत ऐसी, सम और को करे रम्भा नरी।
नैन स्रवन सुख पावत तो तैं तातें साहजहाँ सुदिस्ट करी ॥ ३६१ ॥

तेरी जो बिद्या को घमंड सदाई सहत राग धुनी।
जहाँ जंतर सुरमंडल रबाब अंबरती (?) सारंगी,
डाँडी, पखावज, आवज, किनर, चंग पाँच सब्द बाजें, गावत गुनी ॥३८५॥

तब जसन देखत रीझ रहे नेत्र, संतोष पावही कहत करन।
रूप रेख गुन कों तों रुचे सुहाग वही करतार तरन ॥
कुआड मारग की संचाई, पातियत, चरन कमलन में
कहियत तिवर भेद सब्द धरन ॥
साहजहाँ के रंग को प्रान प्यारे जा सोहत नखसिख
नवाभरन ॥ ३९२ ॥

आद मूरत नाद उतपत, मत संगीत सहत कर रसबस जानी पातसाह।
जिते गुनी रबि चक्र तर रहत, कहावत है सुघर,
जिनहूँ ग्रन्थ बरजोर, ते सीखत बिद्या तुमपैं आवत पीछैं कछु जो जाह ॥
उत्तम ग्यान परमान सब बिध प्रबोधमत सत ते गये निबाह ॥
गुन समुद्र अपार विस्तार प्यारे साहजहाँ आए जगत गुर आह ॥ ३९४ ॥

लखी हिती सो कीनी पूरी प्लुत तोन ग्राम तिरथान पूर जन्त्रक पेखी।
जे सास्तर परमान कहे, तिनमें तिनमें निमितहि कीनी साहजहाँ
अंग लेखे के, ती देखी ॥

तेरी सूरत, सोई सीरत बस बिसेखी ।
धन लडा तो आगे और गुनियन लागे लोकहि लेखी ॥ ४३८ ॥

लाछ लछन सों बहु बिनती सुनी, साह आमल,
जैसे मनहित बढ़े सखी-पांत ॥ ४४१ ॥

(अन्य तुकों में संगीत की कोई बात नहीं है)

तन्तु बाज्यो हातन चरनन, किरया अमिल भई घन ।
सुलभ प्रसंग कुआड मारग ललित चलत तबहीं लडा जैबो दच्छन ॥
सुरति सम्मत धौं कहि बानी, लडा पहचानी जब हँसि न पेख्यो आसन ॥
गत मिल रत पूरे साहजहाँ मन रंजन ॥ ६०६ ॥

कुआड नामक एक लय-भेद है जिसमें आड़ (२/३) की आड होती है यानी (४/३) की लय अर्थात् मूल लय की ४ मात्राओं में ३ मात्राओं का प्रयोग किया जाता है । यथा—

१| २ | ३ | ४ |
१ — | — २ — | — ३ — | — — |

प्रबन्ध के तीन भेदों में से आलिप्रबन्ध का एक प्रकार कैवाड है। इसके उद्ग्राह और ध्रुव पाटों से रचित होते हैं और समाप्ति उद्ग्राह में होती है । सार्थक और निरर्थक पादों से निर्मित होने पर यह दो प्रकार का होता है—सार्थक कैवाड और निरर्थक कैवाड । शुद्ध पाटों के प्रयोग से शुद्ध कैवाड, मिश्र पाटों के प्रयोग से मिश्र कैवाड़ कहलाता है ।

करपाट शब्द का अपभ्रंश रूप 'कैवाड' है । कैवाड में करपाटों यानी अवनद्ध वाद्यों के पाटों की प्रधानता होती है—"कैवाड इति करपाटप्रधानत्वात्तद्भवापभ्रंशपदेनेयं संज्ञा" (सं. र. कल्लि० टीका अध्याय ४ पृ० २७५) संभव है कि कैवाड से कुवाड हो गया है ।

प्रस्तुत संग्रह में कुआड से लयभेद अभिप्रेत है, यह तो कई पदों में स्पष्ट है, लेकिन कहीं-कहीं सन्देह होता है कि शायद प्रबन्ध-भेद भी अभिप्रेत हो।

अष्ट विध तूहीं तोइ सों कहत, तू कहि ताके लच्छन ।
चित्र प्रकार तो में तू प्रकट कर, नांतर करन कह तच्छन ॥
जोई तेरी बुध ताके गुन षटत्रिंशत सो अचर तो मानों ।
नांतर कत बोलत है, जाके संगीत सास्तर बिचच्छन ॥
इहं बिध जानत साहजहाँ सकल कला दच्छन ॥ ६३५ ॥

छत्तीस गुण का तात्पर्य अस्पष्ट है ।

राग तार तान अच्छर अर्थ मिल गति मान बरदी तार लै (लय) उठी ।
इहँ बिध पढ़ि पढ़ि गायन नाना प्रकार देसी दिखाय बनाय सुठी ॥

साहजहाँ तुम सब्र अंग जान जिहँ राखी बिधा जो अनुठी ॥
निरत काल कों रची बिरंचि, ताते नगन जटित ताकों सरसती
लै नुठी ॥ ७८३ ॥

सम अतीत अनागत भेद कह मिलवत तार गोहन गत ।
और अनूप प्रकार पूरी लीला सुनत सीखियत तन जाय सुरत ॥
आप अपने अङ्ग साधो माई री, कत परत-बाद (प्रतिवाद)
कर मोसों जुरत ॥
साहजहाँ को ब्योरो करत बलमा ज्यों उधर आवे बानी,
कुबानो कैसे दुरत ॥ ७९६ ॥

प्रथम आए रूप रेख सो बन के गची ।
कट कहिहैं तुरप लैनी मान मची ॥
कवाड भेद लाग डाट लै स्पंजी ॥
सब बिधि पूरी प्यारी साहजहाँ मन खिंची ॥ ९२० ॥

परम प्रबीन प्यारे साहजहाँ पिय सब अंग जाने ।
देस-देस के गुनियत आवत यह सुन की रति बखानें ।
जो सुध सालंक संकीरन को ब्योरो न्यारो के दिखावे
वाहि नेक उर में आनें ॥
ऐसे महाजानि पातसाह गुन के आगर,
गुनियन पें जहाँ चूकें, तहाँ आप तानें ॥ ९३६ ॥

भावभट्ट के ग्रन्थ

अनूप संगीत-विलास और अनूप संगीतरत्नाकर में संकलित तानसेन की छाप वाले जिन पदों में पारिभाषिक शब्दावली आई है, वे टिप्पणी सहित नीचे उद्धृत हैं ।

संगति तुम पें जु सचुं पाईये गाईये ।
तुअ बानी कञ्चन जिमि कसि देखे, उदधि कौ कहा थहाईये ।
जो पें बिद्या की चाह होय तौ सरसु कण्ठ बानी बिलास ध्याईये ।
जहाँ गुनियन गुन परखत, तहाँ तानसेन कौ नाव लै जावनु दै रंग जमाईये ॥
—(अ० स० वि० पत्र ९३ ख)

इस पद में कोई विशेष पारिभाषिक शब्द नहीं है, किन्तु गायन का और उस विद्या के उत्कर्ष के परोक्षण का, रंग जमाने का, "गुन" और "गुनी" का उल्लेख इसे हमारे संकलन की परिधि में लाने के लिए पर्याप्त है । "कंठ वानी विलास" तानसेन की उपाधि के रूप में प्रयुक्त हुआ ।

(राग भैरव)

एकताली-तालेन गीयते । कृति मिया तानसेनस्य ।
गुन समुद्र कल्पतरु अकबर कटतार हो बजावे ।
अकट विकट निपट विकट भेदन ही उपजावे ।
लोल कलोलीनताननि भीजि सु आई गति न आवे ।
अरि धरनी थर थर कांपत आ औचक नचावे ।
सम अतीत अनागत भेदनि गुनियनि समुझावे ।
गोट अपोटनि आगर आरदी बिरदिनन मन मनावे ।
साहि जलाल रसाल है सागर कोऊ अंत न पावे ।
ऐसौ तौ गुरु साहि ताहि तानसैन क्यौं रिझावे ।

—(अ० सं० र० पत्र ४० ख)

इस पद में अकबर को गुण-समुद्र कह कर ताल के विशेष प्रयोक्ता के रूप में उसकी स्तुति की गयी है। "कटतार" या "कठतार" को "करताल" (मजीरा) समझा जा सकता है। "विकट" "निपट" तो ताल-प्रयोग की जटिलता के वाचक हो सकते हैं, किन्तु "अकट" अस्पष्ट है। बीच में "तान" शब्द भी आया है, जो कि स्वर-प्रयोग अंगभूत है, ताल का नहीं। सम, अतीत और अनागत यह तीन ग्रह तो प्रसिद्ध हैं, किन्तु "गोट" "अपोट", "आरदी", "बिरदी" का तात्पर्य अस्पष्ट है।

यही पद पाठ-भेद से अ० सं० वि० में भी इस प्रकार मिलता है :—

अकबर हो कठतार हो बजावै ।
गुन सुमंगल कलपतर आव झनकुरयावझ पखावजनि सुठ्र छि सुनावै ।
जब कोट होनि आगर अरदी बिरदी मन मनावै,
समए अतीत अनागत भेद गुनियत समझावे ।
जब अरिधर डरनि कापै चौरा चक्क नचावै ।
साहि जालाल रसा है सागर कोऊ अंत न पावै ।
तव गुरु साहि ताहि तानसेनि क्यों रिझावै ॥

—(अ० सं० वि० पत्र १ ख)

यही पद किंचित् पाठभेद के साथ श्री अगरचन्द नाहटा ने "संगीत" पत्रिका के "ध्रुपद-धमार" अंक में "अप्रकाशित ध्रुपद" शीर्षक लेख में अ० सं० वि० के पाठ से काफी मिलते-जुलते रूप में उद्धृत किया था।

निम्नलिखित पद में वर्षा के सांग-रूपक के माध्यम से गायन का वर्णन है :—

पटमंजरी

पवन मग उमगि घन, और सपत समुद्र सुरन ते भरत।
समयो नछत्र गरजन हिं आलाप करत।
बुंदे अछर तान, कुहीं उपज, दामिनी भई
यह तार धरन भरन सबद उच्चरत।
इहिं धिरंग झर लायो प्रति इन्द्र
तानसेन सुख सुकाल न टरत॥
—(अ० सं० र० पत्र ७९ ख)

इस पद में सुर (स्वर), आलाप, अछर तान (बोल तान) उपज, तार (ताल) इतने पारिभाषिक शब्द हैं। निम्नलिखित पद में अकबर के सभामण्डल का वर्णन है और उसी प्रसंग में संगीत के कुछ पारिभाषिक शब्द, वाद्यनाम इत्यादि आए हैं—

देशाख्य (राग)

गायन गुनी गन गंध्रप सब चलौ अपने अपने मेल साहि बैठे सभा मंडल।
सप्ततंत्री बीना सुर सप्त कहि लियें अस अंग करि लोने मृदंग आनन्द-
दाता सुरसमूह कौं लीजै सुरमंडल॥
जे पंच शब्द रचि कें पचि कें ताहि
सुनावौ जु तन मन आनंद गुन भरि
राख्यो री ज्यों ब्रह्म गङ्गा भरि रखि कमंडल॥
बिनती करत है तानसैन साहि अकबर कौं रिझाय राषौ जे चिंतत बिद्या गुरु लघु
बिनोद मिलावै और साहि भुवमंडल॥
—(अ० सं० र० पत्र १२४ क, ख)

रामपुर राग माला

इस पद-संकलन में तानसेन को छाप वाले जिन पदों में पारिभाषिक शब्दावली आयी है, वे नीचे उद्धृत हैं।

राग भैरों-चौताला

सघन बन छायौ द्रुम वेली मध पवन अति प्रगास बरन बरन पहुप रंग लायौ।
बौलत कोकिला कीर पोक कपोत चात्रग सबही आनंद करैं चहूँ ओर रंग बरसायौ
बाजत किंनिरि रिसाल बीन मृदंग सुरसुती वर पायौ।
कहैं मीआं तानसैंनि सुनौ हो अलाप करि प्रथमहीं राग भैरौं गायौ॥
—(रा० रा० मा० पत्र २ ख)

इस पद में पक्षियों के कलरव के साथ किन्नरी वीणा और मृदंग की ध्वनि का सादृश्य ध्वनित है। भैरव राग को प्रथम कहना भी ध्यान देने योग्य है। यह पद कई

प्रकाशित ग्रन्थों में काफी पाठ-भेद के साथ उद्धृत हुआ है। "नलिनी" जी ने नौ प्रकाशनों में से इसके पाठ-भेद संकलित किए हैं, किन्तु हमारे लिए वह विस्तृत संकलन अनावश्यक है।

"गुन की लड़ाई" का निम्नलिखित पद में वर्णन है। तानसेन कहते हैं कि इस लड़ाई में से तानों के द्वारा उबरा जा सकता है। आज तान शब्द का जिस अर्थ में प्रायः व्यवहार होता है, उसका सम्बन्ध प्रमुख रूप से ख्याल के साथ जुड़ता है। अतः तानसेन के इस पद से कोई यह निष्कर्ष न निकाल बैठें कि तानसेन ख्याल गायक थे। तान शब्द के कई अर्थ रहे है—यथा :—१—सात स्वरों में से एक या दो स्वरों के वर्जन से प्राप्त रूप, जिसे शुद्ध तान या मूर्च्छना तान भी कहा जाता था। २—स्वरों के उलट फेर से प्राप्त रूप जिसे कूटतान कहा जाता था। ३—राग में स्वर संचार। ४—किसी स्वरावली का आरोहगत रूप इत्यादि।

राग षट—सूरफकता

विद्याधर गुनीअनि सों क्यों अरीऔ गुन चरचा की लराई लरीऐ।
जाई कधू आवै नहीं वासों कहा कहीऐं दौरि गुनीनि के चरन धरीऐ।
मेरौ तेरौ न्याउ निरंजन आगे चंदन वमूर कैसे इक ठौर धरीऐ।
और लराई और लराई नहीं गुन की लराई तानसेनिताननि तरीऐ।

—(रा० रा० मा० पत्र ५८ ख)

निम्न उद्धृत पद में "नाद नगर" का सांगरूपक है। उसमें ध्रुपद को ताले के अन्दर बन्द नग या मणि के रूप में कहा गया है—

रागिनी टोडी—चौताला

नादनगर बसायौ सुरपति मेहैंल छायों उनचासे कोटि तांन
अधिर विश्राम पायौ।
गीत छंद तत वितत धारू कञ्चन अलाप ताल काल के किवार लागे।
हीरा पट तर षरे जंजीर त्रेवट कुञ्जी तामें धुरपत सौ नग छिपायौ।
आरोही अवरोही अस्ताई संचाई जवाहर ओडव षाडव
ढरनि मरनि तेउ लाल कहायौ।
जोंहरी मीआं तानसेनि गाहक जलालदीन जिनि जाकौ भाल कीयौ।
अर्व षर्व और करोर मन मिलाइ कण्ठ लाइ अकबर पारषी पायौ।

—(रा० रा० मा० पत्र ६३ क)

अगले पद में नाद के गढ़ के रूप में सांगरूपक है।

रागिनो मालसिरी "सूरफकता"

नाद गढ सुघर गढ वाकौ कीनौ सप्त सुर,
कोटि कगूरा विकट गढ बाई।
आरोही अवरोही इकईस मूरछिनां चौरो गुरज
चारौ रज चारौ दिसां तोपे लगाई ॥
तांन मांन आछी तीषी नीकी लागति ऐसौ विरंच गढ विधनां बनाई।
कहैं मींआं तांनसेंनि सुनौं सुघर नर अपबल भुलबल लीयौ हूँ न आई।
—(रा० रा० मा० पत्र ८४ क)

निम्नलिखित पद में तानसेन ने सौदागर का रूपक बांध कर ध्रुपद का वर्णन किया है—

रागिनी-छाया-धीमा (?)

धर्म कर्म की अलाप हाट सम्हारी, गुन पूरौ करिबै को बैठो हटवारी।
अकार की डांडी कीनी, जोति करि काइम, ग्राम डोरे मानो,
श्रवननि पालरा तार की चटक वाटी पाछै गहि डारी।
अर्थ मूल ते अछिर समझौं नीकी नी ॥१॥ धुरपत चतुर तौल तुक अति भारी।
जा गुन कौ गाहक राजा रामचन्द्र देत करोरनि, बेचत तानसैन व्यापारी।
—(रा० रा० मा० पत्र १४५ क)

आकार का उल्लेख ध्यान देने योग्य है। द्रष्टव्य ध्रुपद-वार्षिकी अंक पृ० ४६ जहाँ 'आकार' को प्रथम स्वर-लक्षण कहा गया है।

अगले पद में योगी की अखण्ड जागृति का वर्णन है।

राग केदार—चौताला

जागैं जोगी, भोगी रोगी कहा जागैं।
मन सुमिरन ग्यान ध्यान रसना रटत जाकैं अग्न पवन सीत कहां लागै।
सुर नर मुनि गुनी गंधर्व ध्यान धरत है अनहद नाद आ रागै।
अलख पुरिस की अवगति बरनी न जाए, तानसैनि प्रभु अनुरागै।
—(रा. रा. मा. पत्र १६४ ख, १६५ क)

नीचे लिखे पद का आचार्य बृहस्पति ने "संगीत चिन्तामणि" (प्रथम संस्करण, पृ० ३७३, ७४) में यह सिद्ध करने के लिए उपयोग किया है कि तानसेन को मेल-पद्धति के साथ-साथ मूर्छना-पद्धति का भी ज्ञान था और इस पद में षड्जग्राम की निषाद-मूर्छना से बिलावल के स्वरों या बुजुर्ग मुकाम की प्राप्ति की प्रक्रिया बतायी गयी है।

राग कान्हरा—चौताला

धईवत पंचम मधिम गंधार रे रिषब षरज सुर साधि
साधि साधि गुनी निषाद रे।
तैरौ अलंकार बाईस श्रुती साधि वाद चारि सा रे
ग म प ध नी सा सुधर सानी धानी ध प म ग रे ॥
त्रविध त्रविधि सुरनि मधि त्रतीअ त्रतीअ त्रतीअ
अरे वितंत जानत वेदमान सप्त सुर तानि ग्राम
इकईस मूरछिनां छतीस भेद नाद वाद तानसैनि विधान रे।
—(रा. रा. मा. पत्र १८७ अ)

नीचे लिखे पद में अनहृत (अनाहत नाद) की महिमा का वर्णन है। यद्यपि संगीत का सम्बन्ध आहतनाद से ही है, किन्तु आहत के माध्यम से अनाहत के पथ पर आरूढ़ होना भारतीय परम्परा में संगोत का ध्येय अवश्य माना जाता है।

राग परज ताल चौताल

अन अनहृद नाद नमो नमो अईआ त्रगुन सरूप मत सुष सागर भरत।
कंट मोचन अघ हरन प्रकास रास तंत्र मंत्र सुभ अछिर सोधि धरत।
अषल बृम्हंड देव तुम्हीं जोवन मूल तू ही हरत।
तानसैनि साधै ताकौ कोंउ न साधै जे गुनी पचि हारे ते उनिहूँ धरत।
—(रा० रा० मा० पत्र २०२ अ)

नीचे उद्धृत पद में गाने का "सीधा" "विकट" भेद "गन" और "अगन" जिसका तात्पर्य शायद छन्दोबद्ध और छन्दोहीन हो, नाद-ब्रह्म, आलाप, संगति और असंगति ऐसे शब्द हैं, जिनमें से ग्रन्थोक्त परंपरा में तो केवल नाद-ब्रह्म और आलाप का ही स्थान है। "गुणी" भी मौखिक परम्परा का पारिभाषिक शब्द है, जो कि कला के उत्कर्ष का वाचक है।

राग सौंहनी-ताल चौताल

कैसो ग्यान कैसौ ध्यानु पूरन नैन, विरस कैसे सूधो विकट गावै।
कैसो गन कैसो अगन कैसी संगति कैसी असंगति नाद ब्रह्म कंठ कला अलापि सुनावै।
तानसैंनि प्रभु कौ को भेद पावै।
भाँति भांति के तौ गुनीअ कहावै। —(रा० रा० मा० पत्र २३३ ख)

निम्नलिखित पद में वसन्त के अवसर पर गायन-वादन का बर्णन है।

राग हिंदोल-चौताला

सब मिलि करौ अनेग रंग कौं अब आइ हो रितु वसंत।
कोउ हसि तार देत, कोउ छूअत किंनर कोउ मौरं बधावत री त्रीआ प्रसंग।

कोउ गावत, कोउ म्रदंग बजावत, कोउ सुगंध लै लगावत अंग ।
तानसैनि कौ प्रभु रीझि रीझि वारत सषीआ सहित सब संग ।

(रा० रा० मा० पत्र २५० ख)

हमारे इस संकलन के अंतिम पद में वर्षा के अंगभूत मेघ, दामिनी, बूंदें, चातक, दादुर, मोर को कामदेव की सेना के अंगों के रूप में अपह्नुति अलंकार द्वारा चित्रित किया गया है ।

राग-गौंडमलार-चौताला

घन न हौंइ री माई, जे आई मो पर मनमथ की फौजें धावन ।
दामिनी षर्ग (खड्ग) लीऐं बूंद बान बान बरसत गरजन वीर रस दमांमौ बजावन ॥
जासूस चात्रग लायौ हो टेर मोहि माहि अकेली सप्त सुरन दादुर नफीरी सुनावन ॥
सैंहैंनाइननि मोर मार करन हैं नाचि नाचि जे
सब तानसैंनि के प्रभु के आगैं आवत करन ॥

—(रा० रा० मा० पत्र २८१ क)

रा० रा० मा० से यहाँ उद्धृत सभी पद आचार्य बृहस्पति की पुस्तक "ध्रुपद का उद्भव और विकास" में भी "तानसेन" शीर्षक के अन्तर्गत किंचित् पाठ भेद से उद्धृत हैं । पाठ-भेद का एकमात्र कारण मुद्रण में अशुद्धि अथवा पाण्डुलिपि पढ़ने में अन्तर ही हो सकता है, क्योंकि इस संकलन की एक ही पाण्डुलिपि है, जिसका उपयोग आचार्य बृहस्पति और डॉ० नलिनी दोनों ने किया है । अब यह पाण्डुलिपि उत्तर-प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ में सुरक्षित है ।

रा० रा० मा० में संकलित तानसेन के पदों में चौताला, सूल फ़ाख्ता जैसे आज प्रचलित तालों के नाम, संगीत के विभिन्न पक्षों को "प्रस्तुत" (उपमेय) बना कर साङ्ग-रूपकों की रचना, नाद-महिमा इत्यादि का वर्णन अन्य संकलनों में प्राप्त पदों की अपेक्षा विशिष्ट है ।

उपसंहार

कि० नौ०, सहसरस, भावभट्ट के ग्रन्थ अ० सं० र० और अ० सं० वि० एवं रा० रा० मा० से संकलित पदों का जो स्वल्प अध्ययन हमने इस लेख में प्रस्तुत किया है, उससे निम्नलिखित निष्कर्ष निकल सकते हैं ।

१. कि० नौ० में दक्खन का क्षेत्रीय प्रभाव है, जिसके कारण राग-ध्यान को उसमें स्थान मिला है; सहसरस में राजा मानसिंह तोमर की सभा की छाया है, जिसके कारण भरत, मतंग, संगीत रत्नाकर सप्ताध्यायी, आदि का पुनः पुनः नामोल्लेख है और तानसेस के पदों में नवीन उद्भावनाओं सहित साङ्गरूपकों की भरमार से अकबर के दरबार के अलंकार-प्रिय वातावरण की झलक मिलती है ।

२. ग्रन्थोक्त और मौखिक परम्परा में प्रचलित, इन दोनों प्रकार की पारिभाषिक शब्दावली सभी संकलनों में मिलती है। इससे "सम्प्रदाय" में "शास्त्र" का अनुप्रवेश सिद्ध होता है और साथ ही सम्प्रदाय में निहित 'शास्त्रानुक्त' किन्तु 'शास्त्राविरुद्ध' पूरक सामग्री का संकेत भी मिलता है। कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जिनका शास्त्र की अपेक्षा सम्प्रदाय में अर्थ-विस्तार हुआ है। उदाहरण के लिए गुण शब्द शास्त्र में कण्ठ अथवा हस्त अथवा फूंक, गायक अथवा वादक और गीत अथवा वाद्य के उत्कर्ष-सूचक तत्त्व का वाचक है, किन्तु मौखिक परम्परा में यह गायक या वादक के समग्र ज्ञान-कौशल का वाचक बन गया है। इसी अर्थ में इसका पदों में प्रयोग हुआ है।

ध्रुपद के पदों को लेकर विशिष्ट अध्ययन का यह आरम्भ मात्र है। इस क्षेत्र की अनन्त सम्भावनाओं की ओर इंगित मात्र भी हो सके तो यह लेख सार्थक होगा।

संकेत-सूची

१. अ० सं० र० = अनूप संगीत रत्नाकर
२. अ० सं० वि० = अनूप संगीत विलास
३. कि० नौ० = किताबे नौरस
४. रा० रा० मा० = रामपुर रागमाला
५. सं० र० = संगीत रत्नाकर

MUSICAL TERMS IN DHRUPAD TEXTS.

Dr. Prem Lata Sharma.

(Editor's Summary)

Oral tradition has been the main vehicle of the transmission of knowledge and skill in India. The Indian tradition accepts two streams in a discipline or art, viz. Śāstra (discipline) and Sampradāya (teacher-student-tradition). Roughly speaking, Śāstra could be identified with the written tradition and Sampradāya with the oral tradition, but this identification is very superficial because the written and oral traditions are so intermingled with each other that it is impossible to treat them as distinet and independent. Śāstra has been perpetuated, nourished and transmitted through sampradāya and the latter has always had direct or indirect roots in the former.

Śāstra can be said to be the stream of formulated knowledge and Sampradāya could be identified with the unformulated or fluid stream of knowledge and skill. Just as Anibadha (uncomposed or improvised) and Nibaddha (composed) are mutually interdependent components of Indian music, similarly the Lakṣaṇa formulated in Śāstra and the relatively unformulated Laksaṇa and Lakṣya in Sampradāya percolate into each other in a very natural process.

The song-texts of Dhrupad fall under the category of Sampradāya because they have been transmitted through oral tradition. A study of the technical terms of music forming part of Dhrupad texts will reveal as to how and to what degree the Sangīta Śāstra has percolated into Sampradāya. The second number of DA contains an article by Francoise Delvoye entitled "Sources of material for Critical studies in Dhrupad song-texts". This article gives the first and second place to Kitabe-e-nauras and Sahasaras, in the compilations of Dhrupad song-texts. The basic difference between these two is that KIN, is not at all alive in oral tradition today, while Sahasaras was compiled about 150 years after the original composition of the songs compiled, the source of compilation being oral tradition. The third place has been accorded to the unpublished portions of Anupa Sangīt Ratnākara, Anūpa Sangīt Vilāsa of Bhāva Bhaṭṭa and the fourth place is accorded to Rampur Rag mala deposited in the U. P. Sangeet Natak Academy, Lucknow. A study of technical terms of music found in the Dhrupad song-texts of the first two compilations and Dhrupad song texts ascribed to Tansen as found

in the compilations that have been given the third and the fourth position above, has been attempted in this article.

Kitabe-e-nauras

16 out of 59 song-texts found in this text have been selected for our study. 8 out of 16 give Rāga Dhyāna (visual contemplation of rāga-s), the rāgas covered being Rāmakri, Bhairava (2 songs), Megha or Malar (3 songs) Gourī and Karnātī. These texts are very important because they reflect the contribution of the Deccan region to the tradition of Rāga-Dhyāna and Rāga-Mālā paintings. As a comparison, it is interesting to note that the song-texts of Bakhshao composed in the Court of Raja Mansingh Tomar in Gwalior about 50 years before KIN, and compiled from oral tradition in the court of Shajahan about 100 years after KIN have no place for Raga-Dhyāna at all. Not only that, the song-texts ascribed to Bakhsh'ao and compiled in Sahasaras do not even mention the couple of Rāga-ragiṇī, barring two exceptional song-texts out of 1000, where this couple has been mentioned. It has to be remembered that Rāga-Dhyāna and Rāga Rāgiṇī classification are interdependent.

Under musical terms the names of musical instruments, Nāda, Tāla, Atīta and Anāgata, the two grahas of tāla and Rāga Rāgiṇī, these are the main occurrences. The absence of Mūrchanā, Grāma, Ālāpa, Tāna etc. is notable. Apart from the musical terms occurring in song-texts, the way of mentioning rāga-names on top of respective texts also deserves attention. Every rāga name is preceded by the words "Dar Muqam" and the word rāga is not mentioned. For example, "Dar Muqam Rāmakrī Nauras"; in this phrase Rāmakrī is the name of rāga, Muqam seems to be the equivalent of rāga and Nauras is added on account of the special interest in Naurasa shown by the author by naming his best elephant, gem, palace, treasure etc. after Nauras. (Navarasa). The contemporaneous tradition according the first place to Bhairava in the scheme of rāgas-s does not find a place in KIN, because Bhūpalī has been given the first place here. The biggest number of song-texts comes under Kanada. The replacement of rāga with Muqam deserves special attention because most of us have been identifying Muqam with Mela or Samsthāna, both standing for scales and not melodic species.

The technical terms standing for sections of Dhrupad are notable on the following accounts :—

(1) There is no name given to the first section, neither Dhruva nor Sthāī nor anything else.

(2) The second section bears the name of Antarā and the third Ābhoga, but where there are more than one section between the first and last one, the each of the intervening sections bears the name of Bain. Sometimes the first section is followed by Ābhoga without any Antarā intervening.

(3) Many song-texts are preceded by 'Doharā' which resembles *dohā* in its metric structure. The function of doharā could have been to provide an adequate melodic and structural introduction to the song concerned and could perhaps be equated with Udgrāha. It should be noted that Sahasaras or Bhāva Bhaṭṭa's works or RRM do not mention any names for the sections of songs.

So far as rhyme is concerned, the special notable feature is that each section has its own rhyme. There are very few song-texts where the end rhyme of all section is one and the same. On the other hand, the song texts of Saharasas and Bhāva Bhatta's works as well as Rampur Rāga Mālā have uniform end-rhyme in all the sections and internal rhyme within sub-section is generally absent.

Sahasaras.

Just is the main characteristic feature of KIN is the treatment of Rāga Dhyāna in its song-texts, the striking feature of Sah. is the mention of Bharata, Mataṅga, Sangīta Ratnākara and its synonym Saptādhyāyī. The fact could form the basis of the conjecture that the above authorities and texts must have been well-known īn the Court of Mansingh Tomar. Under the topic of svara, śruti, grāma, mūrchanā, śudha tāna, kūṭa tāna and its corollary naṣṭa-uddiṣṭa, śudha-vikṛta-svara, gamaka, 4 varṇa-s etc. find a place. It is notable that no mention is made of the Mela system.

The terms related to tāla bear affinity with both the mārga tāla system and the deśī tāla system. In the context of dance, the terms are predominantly drawn from the deśī corpus, Sanskrit terms are comparatively few.

Sanskrit terms related to Prabandha are profusely mentioned and the word Dhrupad also occurs in several song-texts. As for rāgas, the 1000 song-texts of this compilation are grouped under 50 headings which are clearly rāga names, but the word rāga is mentioned with them only in 5 cases out of 50. The biggest number (102) of song-texts is put under Kānada just like in Kin. There are many song-texts which could not be demarcated on account of mixed predominance of

terms related to svara, tāla, dance or prabandha; they have been put under the miscellaneous category. In all, 85 out of 1000 song texts were found relevant here.

Bhav Bhatta's Texts and RRM.

We have taken up only the songs ascribed to Tansen compiled in the two works of Bhāva Bhaṭṭa viz. Anūpa Saṅgīta Ratnākara, Anūpa Sangīt Vilāsa and RRN. The special characteristic of many of the song-texts reproduced here is the treatment of Nāda or the art of music in a very poetic and figurative way, the mention of figures of speech being Rūpaka, some terms in the context of tala are typically Desi and obscure to some extent.

Conclusion.

The above study lead to the following general observations.

(1) KIN clearly bears regional influence in its treatment of Rāga Dhyāna-s. Sahr. reflects the atmosphere of Mansingh Tomar's Court in which Bharata, Mataṅga, Saṅgīta Ratnākara etc. were well-known. The song-texts ascribed to Tansen have an abundance of the figure of speech Rūpaka and this reflects the favour for ornamentation at all levels in Akbar's Court.

(2) All the compilations of song-texts contain technical terms of music both from the written and oral traditions. This is an evidence of the percolation of Śāstra into Sampradāya.

List of Abbreviations

DA Dhrupad Annual.
KIN Kitabe-e-nauras.
Sah. Sahasaras.

म'आरिफुन्नग़मात का ध्रुपद के स्रोत के रूप में विश्लेषण

राधेश्याम जायसवाल

भूमिका

म'आरिफुन्नग़मात और उसके संकलनकर्ता राजा नवाब अली के नाम से हिन्दुस्तानी संगीत का प्रत्येक विद्यार्थी न्यूनाधिक रूप से अवश्य परिचित है। किन्तु परिचय प्रायः नाम-श्रवण तक ही सीमित रह जाता है। बहुत हुआ तो म'आरिफुन्न-ग़मात को स्वरलिपि सहित-ध्रुपदों का संग्रह और राजा नवाब अली को पंडित भात-खण्डे के सहयोगी और मित्र के रूप में जाना जाता है। ध्रुपद के राग-ताल-पद-पक्षों के अध्ययन के लिए म'आरिफुन्नग़मात में संकलित सामग्री का विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत करना ही इस लेख का उद्देश्य है।

संस्करण

यह संकलन तीन भागों में है। आज तीनों भाग संगीत कार्यालय हाथरस द्वारा पुनर्मुद्रित रूप में ही प्राप्त हैं। इन पुनर्मुद्रणों में मूल संस्करणों की जानकारी किसी प्रकार नहीं दी गयी है। सौभाग्य से इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में दूसरे भाग के मूल संस्करण की एक प्रति उपलब्ध है। उसके मुखपृष्ठ को हम यहाँ फोटोकापी के रूप में पुनर्मुद्रित कर रहे हैं। इस मुखपृष्ठ से दूसरे भाग के प्रथम संस्करण का सन् १९२४ ज्ञात होता है। ऐतिहासिक महत्व की दृष्टि से इस संस्करण का समर्पण-पत्र और भूमिका भी हम पुनर्मुद्रित कर रहे है। पहले और तीसरे भागों के मूल संस्करण हमें .देखने को नही मिले, इसलिए उनके प्रथम प्रकाशन के सन् ज्ञात नहीं हो सके। संगीत कार्यालय द्वारा प्रथम भाग का तीसरा संस्करण सन् १९७४ में प्रकाशित हुआ और तीसरे भाग के मराठी संस्करण का दूसरा पुनर्मुद्रण सन् (?) में प्रकाशित हुआ। (प्रकाशन वर्ष उल्लिखित नहीं।) मराठी का का प्रवेश केवल मुखपृष्ठ और भूमिका तक ही सीमित है, स्वरलिपि का अंश तो यथावत् है। दूसरे भाग के मूल संस्करण और हाथरस संस्करण की तुलना करने पर पता चला कि उसमें मूल संस्करण के दस पद (संख्या १५७ से १६५) लुप्त हैं। या तो पुनर्मुद्रण के लिए जो मूलप्रति उपलब्ध हुई होगी, उसमें इन पदों के पन्ने गायब रहे होंगे और या फिर किसी अज्ञात कारण से ये नौ पद छोड़ दिए गए होंगे। जो भी हो, पुनर्मुद्रित संस्करणों में मूल संस्करण का विवरण न दिया जाना कितने घोर अज्ञान और भ्रम का जनक हो सकता है, इसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है।

संकलित पद

म० नग० में केवल ध्रुपद धमार संकलित हुए हों, ऐसी बात नहीं है। प्रथम भाग में तो लक्षण-गीतों का संग्रह है। केवल ध्रुपद है, जो दूसरे भाग में पुनरावृत्त

है। प्रत्येक राग का विवरण भी दिया गया है। सभी लक्षण-गीत पं० भातखण्डे द्वारा रचित हैं। अधिकांश ध्रुपद दूसरे भाग में संकलित हैं (कुल संख्या १६१)। तीसरे भाग में भी १८ ध्रुपद हैं। क्रमिक-पुस्तक-मालिका में भी ऐसे अनेक ध्रुपद हैं जो म० नग० में भी हैं। इन दोनों संकलनों में समान रूप से प्राप्त ध्रुपदों का तुलनात्मक अध्ययन रोचक और उपयोगी होगा। यहाँ तो हम केवल म० नग० में संकलित ध्रुपदों का विश्लेषणात्मक विवरण दे रहे हैं, जिसमें अकारादि क्रम से राग नाम, प्रत्येक राग में पद-संख्या, प्रत्येक पद का ताल और प्रथम विदारी, धातुओं की संख्या (केवल स्थायी, अन्तरा के रूप में दो अथवा संचारी, आभोग जोड़कर चार अथवा आभोग छोड़कर तीन) और पदों की प्राप्ति के स्रोत-स्वरूप विद्वानों के नाम, इतना तालिका के रूप में दे रहे हैं। केवल "ध्रुपद" (कुल संख्या १७९) को ले कर यह तालिका बनाई गई है, धमार और सोदरा (जो केवल तीनेक की संख्या में प्राप्त हैं) छोड़ दिए गये हैं। धमार तो विपुल संख्या में हैं। इस तालिका से जो सामान्य निष्कर्ष निकलते हैं, वे तालिका के तुरन्त बाद दिए गए हैं। अन्त में ठाकुर नवाब अली का संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रस्तुत है।

दूसरा भाग

जिसमें हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध गायकों के उत्त-मोत्तम पद संग्रह किए गए हैं।

जिसको

आली जनाब मुहम्मद नव्वाबअलीख़ां साहब तअल्लुक़े-दार अकबरपुर ज़िला सीतापुर ने अतीव परिश्रम से संग्रह कर प्रकाशित किया है

वही

पहिली बार १०००

लखनऊ

केसरीदास सेठ सुपरिंटेंडेंट द्वारा

नवलकिशोर प्रेस में छापी गई

सन् १९२४ ई०

समर्पण ।

इस पुस्तक को मैं अपने परम प्रतिष्ठित मित्र, संगीतविद्या के विद्वान् और उसके प्रचारार्थ अथक परिश्रमी पं० विष्णुनारायण भातखंडे साहब बी. ए., एल-एल. बी., वकील हाईकोर्ट, बम्बई की सेवा में सादर समर्पण करता हूँ ।

नवाबअलीख़ां

भूमिका

मआरिफ़ुन् नग़मात के प्रथम भाग में यथा सम्भव संगीत विद्या के सिद्धान्त अत्यन्त परिश्रम से वर्णन किए जा चुके हैं। उनके साथ ही संगीत के लक्षण और साधारण पद, जिनका स्मरण रखना सीखने वाले के लिये आवश्यक है, लिख दिये गए हैं। लेकिन विद्वान् लोगों को विदित है कि यह शास्त्र समुद्र है, इसका अन्त नहीं। प्राचीन समय से आजतक विद्वानों ने इस शास्त्र समुद्र से अनेकों रत्न निकाला है जो अपनी नवीनता के साथ देदीप्यमान हैं।

द्वितीय भाग में प्रसिद्ध गायकों के पद दिए गए हैं, जो वर्षों की परिश्रम और खोज का फल है। प्रथम भाग में हमने स्पष्ट कह दिया है कि आधुनिक गानविद्या किसी संगीत-ग्रन्थ के अनुसार नहीं है। लेकिन जो रिवाज़ आजकल प्रचलित है, उसका प्रमाण अगर कहीं मिल सकता है तो तानसेन के ख़ानदान से। यह ख़ानदान जलालुद्दीन मुहम्मदअकबर आज़म के समय से अब तक गानविद्या के अभिज्ञों में अद्वितीय है। उस्तादमुहम्मद अलीख़ां तानसेन वंश के यादगार हैं, जिनकी आयु अब ८० वर्ष से अधिक है। उनको अपना ख़ानदानी गुण वंश परम्परागत प्राप्त हुआ है। हमारे देश में विद्या को गुप्त रखने की प्रथा प्राचीन समय से चली आ रही है। उपर्युक्त उस्ताद भी इस प्राचीन प्रथा के अनुयायी थे, लेकिन इस पुस्तक के रचयिता के अनुरोध से विवश होकर उन्होंने गुप्तरत्न को प्रकट किया। जो कुछ उनसे प्राप्त हुआ वह इस पुस्तक में अपने स्थान पर दर्ज है। शोक है कि उपर्युक्त उस्ताद से अधिक समय तक हमारा साथ न रह सका। उस्ताद साहब के सिवा दूसरे प्रसिद्ध व योग्य गायकों से भी जो पद प्राप्त हुए हैं, वह उनके नाम से दर्ज किए गए हैं। इस भूमिका में तानसेन और उनके ख़ानदान के विषय में हम कुछ लिखना चाहते थे, लेकिन उनके सम्बन्ध में तुहफ़तुल हिन्द, खुलासतुल ऐश, फ़िलस्फ़हमौसीक़ी (नवाबसआदतअलीख़ां उर्फ़ छम्मनसाहब रचित) कनीजुल अफ़ादात और नूरुलहदायक आदि पुस्तकों से आपर्याप्त हाल मालूम हो सका। इससे हमारी यह इच्छा पूर्ण न हुई। सिर्फ़ उस्ताद मुहम्मदअलीख़ां का चित्र दे सके हैं।

हम अपने उन मित्रों को धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने द्वितीयभाग के संग्रह में हमारी सहायता की है।

सब से पहले परममित्र साहबजादा छम्मनसाहब रईस बिलसी धन्यवाद के पात्र हैं। यह महाशय स्वयं इस विषय पर एक पुस्तक लिख रहे थे, जिसके कुछ भाग छप चुके हैं। लेकिन शोक है कि आप उस पुस्तक को समाप्त न कर पाए थे कि बीच ही में देहांत हो गया और अपनी विद्या से संसार को पूर्णतया लाभ न पहुँचा सके।

दूसरे डा० लक्ष्मण गंगाधर नाटूसाहब हैं जिनके पद पाठकों को इस पुस्तक में मिलेंगे। आप उस्ताद मुहम्मदअलीखां के शिष्य हैं।

तीसरे बरेली निवासी मि० एसू, चौधरी हैं। आप से भी कुछ पद प्राप्त हुए हैं।

चौथे अलमोड़ा निवासी पं० सत्यानन्दजी जोशी हैं। आपने लखनऊ में निवास करने के समय इस पुस्तक के संशोधन में सहायता की।

म आरिफुन्नगमात में संकलित ध्रुवपद

राग	ताल	धातु सं०	ध्रुवपद को प्रथम बिदारी	ग्रन्थ की खण्ड सं०	ग्रन्थ की पृष्ठ सं०	संगीतज्ञ जिनसे ध्रुवपद प्राप्त हुए
1	2	3	4	5	6	7
अड़ाना	चौताल	२	तेरो ही ध्यान धर दाता विशंभर हरि	द्वितीय	२२९	मोहम्मद हुसेन खां
अड़ाना	झपताल	२	परत लंका बिलंका धंक धू धंका शाह औरंगजेब चढ़त घोरे	,,	२३०	नजीर खां
अभीरी	झपताल	२	संग लिये अहीरन गन, नाचत मदन मोहन	,,	२९२	पं० वि० ना० भातखण्डे
अल्हैया	चौताल	४	आज और काल और दिन प्रति और-और	,,	४७	,,
,,	,,	२	काजर देहूँ नैन कोरे अब कैसे भजन बने नंदन	तृतीय	९	मोहम्मद अली खां
आसावरी	,,	२	अति प्रताप तेरो जग में हो राव राजे बहादुर	द्वितीय	२७८	पं० वि० ना० भातखण्डे
,, (कोमल ऋषभ)	झपताल	२	लाल अलसाने हो तुम रैन के जागे	,,	२७९	,,
अहीर भैरव	चौताल	२	कर जोर मोर मोर जोवनी बनी कामिन	,,	११६	अब्बन खां
,,	झपताल	२	राधिका रमन गिरधरन गोपीनाथ	,,	११७	पं० वि० ना० भातखण्डे
आनन्द भैरव	,,	२	मेरे मन सुमिरन कर इलाही को नाम	,,	११८	,, ,,
काफी	चौताल	२	आये री मेरे धाम श्याम कुंवर कृष्ण	,,	२४७	मोहम्मद हुसेन खां
कामोद	,,	२	तिय सरीर सागर बन तामें पंकज उरोज	,,	३१	मोहम्मद अली खां
,,	,,	२	सज सिंगार चली पिया पास	,,	३३	मोहम्मद हुसेन खां

1	2	3	4	5	6	7
कुकब	झपताल	२	तेरे मिलनदा चावनी सैयो मैनू (पंजाबी भाषा)	द्वितीय	९५	अब्बन खाँ
केदारा	चौताल	४	सरस्वती माता हो बरदायी	,,	३५	मोहम्मद अली खां
कोमल बागेश्री (कोमल धैवत युक्त)	,,	२	आए अलस्त भए गाए आए डमरू	तृतीय	६४	मोहम्मद अली खां
कोमल भैरव (दोनों ग-नि युक्त)	,,	२	कल अब कैसे परे	द्वितीय	११५	मुन्ने खां
कोमल–रामकली (कोमल गांधार युक्त)	चौताल	२	मोरवा तू मोरे ही आंगन आव	द्वितीय	१२८	अमीर खां, लखनऊ
कौसी	झपताल	२	सो भजि-भजि आवे री	,,	२९८	मोहम्मद अली खां
खट	,,	२	तु है धर्मराज कायम दायम अबला बली जाके	,,	१२९	,, ,,
,,	,,	२	तेरी कवन सरवर करे	तृतीय	३३	,, ,,
खम्बावती	चौताल	२	आदि मध्य अन्त जोगादि जोगी	द्वितीय	१०६	अब्बन खां
खमाज	,,	२	वंशी धुन सों बजाय बाजत श्री बृन्दाबन	,,	८३	मोहम्मद अली खां
,,	,,	२	माई री बरजो ना मानत अति ही हठीली	,,	८५	पं० वि० ना० भातखण्डे
,,	झपताल	२	सुध बिसर गई आज अपने गुनन की	,,	८६	मोहम्मद अली खां
खमाज	चौताल	२	कान्ह आज आए री	तृतीय	२०	मोहम्मद अली खां
खमाजी-कान्हड़ा	चौताल	४	मैं जब देखी गोपाल लाल मोहनी मूरत शाम	द्वितीय	२३७	,,

1	2	3	4	5	6	7
गंधारी (एक प्रकार)	,,	२	व्यास शाम अनगन गुन ज्ञान	द्वितीय	२८८	मोहम्मद अली खां
गारा	,,	४	प्यारे की मूरत चित चढ़ी	,,	१९२४।१८६	,,
गुनकली	सूल	२	मैंने सिखाई तैं, तोय विद्या कहाँ पाई	,,	८१	मोहम्मद अली खां
गूजरी	चौताल	२	सरस्वती से मांगत हूँ विद्या	,,	२६२	,,
,,	सूलफ़ाक्ता	४	तेरो बल प्रताप जैसो	,,	२६३	नवाब छम्मन साहब
गौड़ मल्हार	चौताल	४	शाम लौं घनश्याम उमड़ आयो	,,	१८२	मोहम्मद अली खां
,,	,,	४	इन्द की असबारी	,,	१८५	,,
गौड़ सारंग	,,	२	माधो मुकुंद मधुसूदन मुरारी राधापति मन रंजन	,,	१९२४।१७८	,,
,,	,,	२	ऐसे नैना अरन बरन तेरे री	तृतीय	६१	मोहम्मद अली खां
चर्जू की मल्हार	,,	२	हमें बोली बोल लेके परतीत-परतीत	द्वितीय	१९३	नवाब छम्मन साहब
छायानट	,,	२	माननी मान काहे को करत	,,	२८	पं० वि० ना० भातखण्डे
,,	झपताल	२	किरपा करो तुम भोलानाथ	,,	२९	अब्बन खां
ज़ीलफ	,,	२	मेरी मदद करो या शाह मेरे	,,	३०२	मोहम्मद अली खां
जैजैवन्ती	चौताल	४	रंग रहे लाल उनही तिरियन संग	द्वितीय	९६	मोहम्मद अली खां
,,	,,	२	तोरे कैसे धोरे आऊँ छोड़त नाहीं	,,	९८	,,
,,	झपताल	२	किन प्रवीन सखी-बिनती कर जोर के	,,	१००	नजीर खां
जैजैवन्ती-कान्हड़ा	चौताल	२	मनसा पूरन कीजै मेरी	,,	२३४	अब्बन खां
जैत	,,	२	मेरी री अंगना गुलाब	,,	४२	मोहम्मद अली खां
,,	,,	२	गागरिया छुवन तोहि....	,,	४३	,,
,,	झपताल	२	जय जय भवानी पति	,,	४४	पं० वि० ना० भातखण्डे
जैतश्री	चौताल	४	कान्हर जनम लियो औतार हरे	,,	१४३	मोहम्मद अली खां
जोगिया	,,	२	अखिल गुनन भण्डार	,,	१२२	,,

1	2	3	4	5	6	7
झिंझोटी	चौताल	४	अँखियां जोहतीं अब नैन भये	द्वितीय	८८	मोहम्मद अली खाँ
टोड़ी	,,	२	मेरे तो अल्ला नाम को अधार	,,	२५९	रजा हुसेन खां
तिलक कामोद	,,	२	हर हर हर करत फिरत	,,	९४	मोहम्मद अली खां
,,	झपताल	२	हर विनायक लम्बोदर	,,	९५	,,
तिलङ्ग	सूल	२	प्रथम परवरदिगार	,,	९२	,,
दरबारी-कान्हड़ा	चौताल	४	परताप भयो प्रसिद्ध शाह को	,,	२१४	,,
दुर्गा	झपताल	२	ख्वाजे मोईनुद्दीन तुम हो पीरों के पीर	,,	८०	अब्बन खां
देवगिरी	चौताल	२	दिन गिन दे रे बमना	द्वितीय	५९	मोहम्मद अली खां
,,	,,	२	तेरो परताप बड़ो शहनशाह	,,	६०	,,
देवसाख	झपताल	२	चमत्कार दीदार रच परवर दिगार	,,	२४९	,,
देस	,,	२	ऐ सखी सावन आयो	,,	१०७	नवाब छम्मन साहब
,,	झपताल	२	अचल रहो राजतखत मुबारक	तृतीय	२९	मोहम्मद अली खां
देसकार	चौताल	२	पढ़ पढ़ पंडित भये पच-पच नाचन लागे	द्वितीय	६१	अब्बन खां
,,	झपताल	२	हे देवी परसाद दीजै अपने जन को	,,	६३	भूनू सोलन
,,	चौताल	२	ताल सुरन की विद्या जानत जंजाल	,,	६४	मुन्ने खां
देस मल्हार	रूपक	२	कौन खता मेरी, सो मैं नहिं जानूँ	,,	१९६	नवाब छम्मन साहब
देसी (एक प्रकार)	झपताल	४	निरंजन कीजे मुकति मेरी	,,	२८१	मुजफ्फर खाँ
धनाश्री	चौताल	२	सास सदन मदन कदन दरशन को	,,	२४२	पं० बि० ना० भातखण्डे
धानी	चौताल	२	राज राज राजेश्वर शरन हैं तिहारी	,,	२४४	अब्बन खां
नट	चौताल	२	कैसे जाऊँ बीच जमना बाढ़ी	,,	६८	मोहम्मद अली खां
नटबिलावल	झपताल	२	आज नव नागरी लाल सों मच रही	,,	५४	पं० वि० ना० भातखण्डे

1	2	3	4	5	6	7
नट मल्हार	चौताल	२	बनवारी बिन मोको री आली लागत	,,	१९२	नवाब छम्मन साहब
पंचम	चौताल	२	मशायक औलिया, दुखकरन दुख दरिद्र डर सुलतान	,,	१६४	मोहम्मद अली खां
पटमंजरी (कोमल ग-दोनों नियुक्त)	चौताल	२	मेरो मन हर लीनो	द्वितीय	२५१	अब्बन खां
पटमंजरी (दोनों ग-नियुक्त)	चौताल	२	एरी कहूँ पीत नई	,,	२५२	मोहम्मद अली खां
पटमंजरी (शुद्ध ग-नियुक्त)	झपताल	२	गन्धर्व लम्बोदर दुख धीरज	,,	२५४	के० एन० शिवपुरी
परज	चौताल	२	सोहे हसन री तोकों	;,	१५९	मौहम्मद अली खां
परदीपकी	,,	२	मोसो जो आबन कहि गये	,,	१९२४/१८२	अब्बन खां
पूरिया	,,	२	चपल करन सों बाजे	,,	१६७	मोहम्मद अली खां
,,	,,	२	सीस छत्र सोहे मोतियन को	तृतीय	४९	खुर्शद अली खां
पूरियाधनाश्री	,,	४	एरी आज नन्दन आनन्द भये री	द्वितीय	१४४	मोहम्मद अली खां
पूर्वी(कोमल-ध युक्त)	,, ,,	२	मेरी पत राख लीजो हजरत शेख सलीम	,,	१३७	पं. वि. ना. भातखण्डे
पूर्वी(कोमल-युक्त)	झपताल ,,	२	वायो है पीर पूरन परम जोधा	,,	१३८	नजीर खां

1	2	3	4	5	6	7
पूर्वी (दोनों धेवत युक्त)	चौताल (आभोग रहित)	३	पिया बिन नाहीं बनेगो	,,	१३९	मोहम्मद अली खां
बंगाल भैरव	,,	२	नमो नारायन संसार तारन	,,	११४	अब्बन खां
बरवा	,,	२	आयो सावन सोहावन	,,	१९२४/१८३	नजीर खां
बरारी	,,	३ (आभोग रहित)	विरहिन बावरी वेगि सुधि ले हो प्यारे	,,	१७४	मोहम्मद अलो ग्वां
बसंत(दोनों धैवत युक्त)	चौताल	२	बसन्त ऋतु आई भाई मन हुलसाई	द्वितीय	१५४	मोहम्मद अली खां
बहादुरीटोड़ी	सूल	२	अनुद्रुत द्रुत विराम लघु गुरु प्लुत निशान	,,	२७१	पं. वि. ना. भातखण्डे
बागेश्वरी	झपताल	२	धन आज दूल्हो, धन ये महूरत	,,	२२०	मोहम्मद अली खां
बिहाग	चौताल	४	जो लौं हि मारतण्ड चंद्र सोहे असमान मांहि	,,	६९	नवाब छम्मन साहब और पं. वि. ना. भातखण्डे
,,	,,	२	गनपती विघ्न हरन परमान	,,	७१	नवाब छम्मन साहब
,,	झपताल	२	देव देव सतसंग निरअंग बेगंग	,,	७२	नजीर खां
,,	चौताल	२	सियरी सियरी पवन चलत है	तृतीय	१३	मोहम्मद अली खां
,,	,,	२	अजहू समझ अजान सुमर ले	,,	१४	,,
झंकार	,,	२	लाल रंग भरे	द्वितीय	१३२	अब्बन खां
भवसा(ख)	,,	२	ए तेरी जोबन रूप विधना	,,	१९२४/६६	,,
भीमपलासी	,,	२	तन नगर हिरदे तखत मन बादशाह	,,	१९२४/१८०	मोहम्मद अली खां
,,	,,	२	जाके मिर्ग छाला ताके मोतियन की माला	तृतीय	६२	अहमद खां

1	2	3	4	5	6	7
भूपाली	,,	४	बानी चारों के व्योहार सुन लीजे हो	द्वितीय	१७	मोहम्मद अली खां
भैरव	,,	२	मोसों जो अवध बदी	,,	११०	मुन्ने खां
,,	,,	४	ज्ञान मदमाते जें नैन निसदिन	,,	११२	नवाब छम्मन साहब
,,	चौताल	२	शाहे अलाउदीन मौजे दरीया	तृतीय	३०	मोहम्मद अली खां
भैरवी	चौताल	२	जो तू रचो समान दया सों	द्वितीय	२९३	पं. वि. ना. भातखण्डे
,,	सूल	२	शारदा विद्या दानी दयानि	,,	२९४	मोहम्मद अली खां
मदमाद सारंग	चौताल	२	ऐसी सरदाई खस खाने की	द्वितीय	२०२	मोहम्मद अली खां
,,	झपताल	२	आज अंजन दियो राधिका नैनन को	,,	२०३	नजीर खां
मालकौस	चौताल	४	सोहत चन्द्र वदनि मृग नैनि	,,	२९९	मोहम्मद अली खां
मालश्री	चौताल	२	जेते गुनी ज्ञानी रच पच हारे	,,	२६	अमोर खां
मालीगौरा	त्रिताल	२	राजा श्रीरामचन्द्र कृपालु	,,	१६६	अब्बन खा
मियां की सारंग	चौताल	२	दयानिधि दया करियो	,,	२०९	मोहम्मद अली खां
मियां की मल्हार	,,	२	बरखा पतुर नाचो होय राग भूमि बादर	,,	१७८	,,
,,	झपताल	२	आयो है मेघ नयी रीत सों झरलायो	,,	१८०	नजीर खां
मीरा बाई-	चौताल	४	तुम घनते घन गरजे	,,	१९५	रजा हुसेन खां
मुद्रीक कान्हड़ा	,,	२	बेगि तुम करम करो पीर	,,	२४०	मोहम्मद अली खां
मुलतानी	,,	४	तू ही विधाता लोकपती	,,	२५६	,,

1	2	3	4	5	6	7
मुल्तानी	चौताल	२	सोहत भीजे बालचन्द्र बदन	तृतीय	७०	मोहम्मद अली खाँ
मेघ	,,	२	तू लागी मान करन	द्वितीय	११८	,,
,,	झपताल	२	मगन रहो रे दलिद्र भूवन अपार	,,	११९	,,
यमन	चौताल	२	तान ताल सों ही गाइये	द्वितीय	१२	पं० वि० ना० भातखण्डे
यमन कल्याण	,,	४	तकत हूँ तिहारी आस	,,	१३	मोहम्मद अली खां
रामेश्वरी	झपताल	२	प्रथम सुर साधे	,,	१०४	नजीर खां
रामकली	चौताल	२	कन्हैया आज बन बाँसुरी बजाई	,,	१२४	मोहम्मद अली खां
,, (तीव्र मध्यम रहित)	,,	४	उठो प्यारी भोर भई री	,,	१२६	,,
,,	झपताल	२	विद्याधर गुनीयन सो डरिये	तृतीय	३२	,,
रामदासी मल्हार	चौताल	४	कितक दूर है वो मथुरा नगर	द्वितीय	१८७	,,
रूपमंजरी मल्हार	रूपक	२	बरखा रूप आगम	,,	१७६	नवाब छम्मन साहब
लंकदहन सारंग	झपताल	२	रट हर प्रिया को नाम नित	,,	१९२४/१७७	पं० वि० ना० भातखण्डे
लच्छा साख	चौताल	२	अजहू समझ रे मन मूरख	,,	५७	,,
,,	झपताल	२	प्रथम ताल सुर साध सो ही गुनी	,,	५८	मोहम्मद अली खां
लछमी टोडी	चौताल	२	रूपवन्ती लाजमन्ती मानमती मुख तेरो नीको	,,	२९७	,,
ललित	चौताल	२	ए अल्ला तेरो सांचो नाम	,,	२९८	,,
ललित गौरी	,,	२	फूली सांझ मधुवन में	,,	१३३	,,
ललित गौरी	चौताल	२	अकबर रोरे दर दर दौरे	,,	१३५	,,
				तृतीय	३७	मोहम्मद अली खां

1	2	3	4	5	6	7
9 ललित गौरी	चौताल	२	लाख रखो मेरी साहेब	तृतीय	३९	मुहम्मद अली खाँ
लाचारी टोडी	,, (आभोग रहित)	३	तेरे दृगन देख मृग सेवत उजार बन	द्वितीय	२७५	,,
विभास (शुद्ध ऋषभ-धैवत का एक प्रकार	,,	२	बाज ध्यान आवत ही बूझूं धुनि आतम की	,,	६५	अब्बन खां
विभास	,,	२	ये नरहर नारायण गोपाल गदाधर	,,	६६	पं० वि० ना० भातखण्डे
,, (तीव्र मध्यम तथा शुद्ध धैवत युक्त)	,,	२	पढ़-पढ़ पंडित भए	,,	६७	मुन्ने खां
विलासखानी टोडी	,,	४	ये दिन ही दिन बिकसत राजकुमार	,,	२७२	मोहम्मद अली खां
वृन्दावनी सारंग	,,	४	रात समै रस केल के सुन्दर भोर भई	,,	२०५	,,
,,	,,	२	धन-धन वृन्दावन, धन-धन गोकुल	,,	२०७	,,
शंकरा अरन	सूल	२	अरिनन दल दरे रे भुजन भाव अब	,,	७८	,,
शंकरा भरन	चौताल	४	आये जी कैसे आवन पाये	,,	७६	,,
शहाना	झपताल	२	अवगुन हरो सकल हूँ नाथ मेरे	,,	२३९	पं० वि० ना० भातखण्डे
शिवमत भैरव	चौताल	२	मोहन जागो मनोहर मदन मोहन	,,	१२०	मोहम्मद अली खां
शुक्ल बिलाबल	चौताल	२	राजाराम निरंजन हिन्दूपति सुलतान के	द्वितीय	५०	मोहम्मद अली खां
,,	,,	२	भरन जो गई जल जमुना तट	तृतीय	१०	,,
,,	झपताल	२	कल ना पर मोको निस दिन निरदई	द्वितीय	५२	नजीर खां

1	2	3	4	5	6	7
शुद्ध कल्याण	चौताल	२	हादी अल्ला साहेब सांई सत्तार रब करीम	द्वितीय	५	मोहम्मद अली खां
,,	झपताल	२	सर्वं मनता करता	,,	६	नजीर खां
,,	चौताल	२	गुरू गनेश संसार सरस्वती और-और	,,	७	मोहम्मद अली खां
,,	,,	२	हीरन जटित रतनन के आभूषन	,,	९	,,
शुद्ध बिलावल	चौताल	२	अधरन की लाली को प्रतिबिम्ब	,,	४५	,,
,,	,,	२	पिया बिन कैसे रहिये	,,	४६	,,
शुद्ध मल्लार	,,	२	कनक बरन बृज रछन बछन कारे	,,	१७७	,,
शुद्ध सारंग	,,	२	माई री मै कासे कहूँ पीर अपने जिया की	,,	२००	पं० वि० ना० भातखण्डे
श्रीराग	,,	४	भस्म भूषन अङ्ग लहे चतुर	,,	१४८	मोहम्मद अली खां
साजगिरी	,,	२	पीर तिहारी एक मैं मुरीद	,,	१७५	,,
सावन्त सारंग	,,	४	माई पिया के मिलिबे को मैं आगम जानूं	,,	२११	अब्बन खां
सुघराई	,,	२	बरन भिन्न बार सांवरे नैनन में कछू टोना	,,	२२६	मोहम्मद अली खां
,,	झपताल	२	सुन्दर नवेली अलबेली के सोहन नैन	,,	२२७	नजीर खां
,,	,,	२	दैया पिया बिन मैका पल ना सुहाए आली	,,	२२८	पं० वि० ना० भातखण्डे
सूहा	चौताल	४	रथ की गरद धूल असमान छायो है	द्वितीय	२२२	मोहम्मद अली खां
सूरदासी मल्लार	रूपक	२	गढ़ दे बीर बढ़ैया, हिंडोल मोरा गढ़ दे	,,	१८९	,,
,,	झपताल	२	साबिर के द्वारे फुहार बरसत	,,	१९१	नजीर खां
,,	चौताल	४	पाती हर जू के हाथ ही दीजै (सूरदास रचित पद)	तृतीय	५३	मोहम्मद अली खां
सेंदुरा	,,	२	माता गाती मदमाती झूमत आवे गुन कीसारी	द्वितीय	३२२	,,
सोरठ	झपताल	२	तेरो ही ध्यान धर ज्ञान करतार	,,	१०९	नजीर खां

1	2	3	4	5	6	7
सोहनी	चौताल	२	ए तेरी परत जोत जगमगात	द्वितीय	१७९	अमीर खां
,,	सूल	४	प्रथम आदि शिवशक्ति नाद परमेश्वर	,,	१७२	मुन्ने खां
हमीर	चौताल	२	घने वार पीपर अम्बे-अम्बे	,,	३९	मोहम्मद अली खां
,,	झपताल	२	प्रबल जस कीरति चहुँ देस-देस में	,,	४०	नजीर खां
,,	चौताल	२	सरस मास देखी तिहारी	तृतीय	७	मोहम्मद अली खां
हिंडोल	,,	२	नाद भेद अपरम्पार, पार हू न पायो	द्वितीय	२३	नजीर खां
,,	झपताल	२	शुभ घड़ी दीनी गाँठ, शुभ महूरत साथ	,,	२४	,,
हेम कल्याण	चौताल	२	अरी मेरो लाल खड़ो है सांवरो सलोनो	,,	२२	मोहम्मद अली खां
त्रिवण	,,	२	जेही-जेही अंग बूझिये	,,	१५२	,,
,,	झपताल	२	कालिन्द्री सरस्वती, अरन बरन उजल बदन	,,	१५३	नसीर खां (खैराबाद)

तालिका का विश्लेषण

ऊपर की तालिका में राग-नाम तो अकारादि क्रम से हैं, इसलिए प्रत्येक राग में प्राप्त पदों की संख्या पाठक स्वयं देख सकेंगे। कई राग-नाम ऐसे भी हैं, जो आज अप्रचलित हैं।

तालों की दृष्टि से निम्नलिखित विश्लेषण प्रस्तुत है—चौताल में १२३, झपताल में ४५, सूलताल में ७, रूपक में ३ और त्रिताल में १ पद हैं। चौताल में सर्वाधिक पद संख्या स्वाभाविक ही है।

धातु-संख्या की दृष्टि से दो धातु (स्थायी-अन्तरा) वाले २४६, तीन धातु वाले (अभोग-रहित) ३ और चार धातु वाले ३० ध्रुपद हैं। इससे ऐसा लगता है कि विस्मृति के कारण ही चार धातु वाले ध्रुपद दो या तीन धातु के रह गए होंगे। यह संभावना कम लगती है कि मूल रूप में ही कुछ ध्रुपद दो या तीन धातु के रहे हों। इस प्रसंग में ग्रन्थाकार का निम्नोद्धृत कथन द्रष्टव्य है :—

"इस (तीसरे) भाग में दो-एक चीजें एसी मिलेंगी जो कि दूसरे भाग में भी दी गई थीं। किन्तु उनके संचारी आभोग गवैय्ये लोगों को स्मरण नहीं थे और बाद में संगीत-राग-कल्पद्रुम में वे मिल गए और उनको तानें (स्वर-योजना) बना लेनी पड़ी।"

—(भूमिका, भाग तृतीय)

रागकल्पद्रुम का एक अन्य प्रकार से भी आपने उपयोग किया है।

यथा—

"जो चीज जिन से मिली हैं, उनका स्पष्ट नामोल्लेख करने का सिद्धान्त मैंने सदा रखा है, किन्तु इस भाग में कई चीजें ऐसी मिलेंगी, जिनमें इस बात का उल्लेख नहीं है कि वे कहाँ से प्राप्त हुई हैं। इसका कारण यह है कि संगीत-राग-कल्पद्रुम (जो एक हिन्दी ग्रन्थ है, जिसमें सैकड़ों होरी-ध्रुपदों के बोल लिखे हैं) उस में से कई ध्रुपदों के बोल पसन्द कर मैंने उन्हें रागों में बाँधा है और उनकी तानें बनाई हैं।"

जिन गुणियों से पदों का संग्रह किया गया है, उनके नाम, नाम के सामने उनके निवास-स्थान का उल्लेख और उनसे प्राप्त पदसंख्या भी नीचे प्रस्तुत हैं—

१. अब्बन खाँ, सहारनपुर	पद—१६
२. अमीर खाँ, लखनऊ	पद—३
३. अहमद खाँ.	पद—१
४. के० एन० शिवपुरी	पद—१
५. खुर्शेद अली खाँ,	पद—१
६. छम्मन साहब, रामपुर	पद—८
७. नजीर खाँ, मुरादाबाद	पद—१६
८. नसीर खाँ, खैराबाद	पद—१
९. भूनू सोलन	पद—१

१०. मुजफ्फर खाँ, दिल्ली	पद—१
११. मुन्ने खाँ, लखनऊ	पद—५
१२. मोहम्मद अली खाँ[१]	पद—९७
१३. मोहम्मद हुसेन खाँ, लखनऊ	पद—३
१४. रज़ा हुसेन खाँ, लखनऊ	पद—२
१५. विष्णु नारायण भातखण्डे, बम्बई	पद—२१
१६. छम्मन साहब और भातखण्डे से संयुक्त रूप से	पद—१
१७. अनामिक	पद—१

इस प्रकार पं० भातखण्डे को छोड़कर अवध, रूहेलखण्ड और दिल्ली के गुणियों से ही पदों का संग्रह हुआ है। देश के अन्य भागों, उदाहरण के लिए बंगाल, में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण अथवा बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में संपन्न ध्रुपद-संग्रहों का इसी प्रकार का विश्लेषण जब हो सकेगा, तब तुलनात्मक अध्ययन के लिए अमूल्य सामग्री प्रस्तुत होगी। यह तो आरम्भ मात्र है।

राजा नवाब अली खाँ का संक्षिप्त जीवन-वृत्त

आप उत्तर-प्रदेश के सीतापुर जिला के अकबरपुर ताल्लुका के ताल्लुकेदार थे। आपको बचपन से हो संगीत में बहुत अभिरुचि थो। इसी कारण बाल्य-काल से ही आपने गायन-वादन की विधिवत् शिक्षा उ० काले खाँ (लाहौर वाले), उ० नजीर खाँ (मुरादाबाद वाले) एवं उ० मोहम्मद अली खाँ से ग्रहण की। उ० काले खाँ पंजाब के प्रसिद्ध गायक थे। उ० नजीर खाँ मुरादाबाद के निवासी थे और उस काल के जाने-माने गायक थे। उ० मोहम्मद अली खाँ तानसेन के वंशज थे। उनके सम्बन्ध में राजा नवाब अली ने दूसरे भाग की भूमिका में लिखा है। (देखें इसी लेख में पुनर्मुद्रित भूमिका)

राजा नवाब अली खाँ एक कुशल गायक तो थे ही उसके साथ-साथ कुशल हारमोनियम-वादक, सितार-वादक एवं तबला-वादक भी थे। उन्हें उस काल की प्रचलित गीत-शैलियों, उदाहरणार्थ– ख्याल, ध्रुपद, धमार, ठुमरी आदि से विशेष प्रेम था। उन्होंने हारमोनियम-वादन की शिक्षा सुप्रसिद्ध हारमोनियम-वादक गणपत राव भैया एवं उस्ताद मोईजुद्दीन से ग्रहण की। उन्होंने लगभग आठ वर्षों तक सितार-वादन की भी शिक्षा ली। उस काल में उ० इनायत खाँ तथा उ० बरकतउल्ला सितार के प्रसिद्ध कलाकार थे। राजा नवाब अली खाँ को इन दोनों सितार-वादकों का सितार-वादन सुनने का अवसर मिला। परन्तु उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि वे इन दोनों सितारवादकों के समान मधुर एवं तैयारी के साथ सितारवादन नहीं कर सकते। इस कारण उन्होंने सितार-वादन करना छोड़ दिया[२]।

१. तानसेन के वंशज।

2. Masic Mavers of Bhatkhande College of Hindustani Music— Susheela Misra, p. 31

सन् १९११ ई० में नवाब अली साहब पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे के सम्पर्क में आए और उनके संगीत-ज्ञान से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने अपने ताल्लुका के प्रसिद्ध गायक उस्ताद नजीर खाँ को पंडित भातखण्डे जी के पास शास्त्रीय संगीत विशेषतः लक्षण-गीत सीखने के लिए भेजा। पंडित भातखण्डे जी द्वारा लिखित ग्रन्थ "श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्" से वे बहुत अधिक प्रभावित थे। इसी ग्रन्थ से प्रेरणा लेकर उन्होंने संगीत को सामान्य जनता तक पहुँचाने के लिए "मुआरिफुन्नग़मात" नामक ग्रन्थ को तीन खण्डों में उर्दू भाषा में लिखा।

राजा नवाब अली ने रामपुर घराना के प्रसिद्ध संगीतज्ञों से पंडित भातखण्डे जी का परिचय कराया था। इस कारण पंडित भातखण्डे जो राजा साहब को बहुत चाहते थे तथा संगीत के लिए उनके समर्पित जीवन को देखकर उनके प्रति आदर का भाव रखते थे। तदनन्तर वे दोनों एक दूसरे के घनिष्ठ मित्र हो गए। जब सन् १९१६ ई० में बड़ौदा में अखिल भारतीय संगीत-सम्मेलन का आयोजन हुआ तो उस सम्मेलन की अध्यक्षता करने के लिए पंडित भातखण्डे जी ने राजा नवाब अली से आग्रह किया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। जब लखनऊ में दो अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों का आयोजन हुआ तो राजा साहब ने पंडित भातखण्डे जी को अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। जब १९२६ ई० में लखनऊ में "मैरिस म्यूजिक कालेज" की स्थापना हुई, तो राजा नवाब अली को उसका अध्यक्ष बनाया गया और इस पद पर वे जीवन पर्यन्त सुशोभित रहे। आपका देहान्त सन् १९३५ में हुआ।

राजा नवाब अली का अधिकतर समय उनके लखनऊ स्थित निवास में व्यतीत होता था। उस्ताद मुन्ने खाँ, उस्ताद सादिक अली खाँ, उस्ताद बाकर हुसेन, उस्ताद मेंहदी हुसेन, उस्ताद नज़ीर खाँ, पं० बिन्दादीन महाराज, नवाब छम्मन साहब (रामपुर के नवाब जिनका नाम सआदत अली खाँ था), पंडित गणपत राव, उस्ताद मोईजुद्दीन आदि सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ इनके परम मित्रों में से थे। राजा साहब ने कुछ व्यक्तियों को गायन की शिक्षा भी प्रदान की। लखनऊ के उस्ताद बड़े आगा खाँ उन्हीं के शिष्यों में से हैं।

*

AN ANALYSIS OF M'ARIFUNNAGHMAT AS A SOURCE OF DRUPAD COMPOSITIONS

Dr. Radheshyam Jaiswal

(Editor's Summary)

M'arifunnaghmat was published in three volumes around the third decade of the 20th century. These volumes have been re-printed by the Sangit Karyalaya, Hathras. But the details of the original editions have not been given in the re-prints. We have been able to lay hands only on the second part of the series in its original edition of 1920. The compiler of these three volumes was Raja Nawab Ali Khan of Akbarpur in Dist Sitapur who is well known as a friend and associate of Pt. V. N. Bhatkhande.

The author of this article has prepared an analytical index of 179 Dhrupad compositions included in the second and third volumes of this series. The First volume contains only Lakṣaṇa-Gītas composed by Pt, V. N. Bhatkhande, This index has been arranged alphabetically according to rāga-names giving the Tāla, number of sections, first sub sections of the song texts, the musician from whom the composition was obtained and reference to Volume I or II with page number. A brief life-sketch of the author who passed away in 1935 has also been given.

ध्रुपद के लक्षण से सम्बद्ध कुछ वचन : एक समीक्षात्मक विवेचन

आदिनाथ उपाध्याय

यह तो सर्वविदित है कि ध्रुपद के आविष्कारक या प्रतिष्ठापक मानसिंह तोमर रहे हैं, किन्तु तथ्यों के अभाव में निश्चित रूप से यह कह पाना कठिन है कि उनके द्वारा आविष्कृत ध्रुपद का ठीक-ठीक स्वरूप क्या रहा होगा[1] ? वस्तुतः यह कहना भी कठिन है कि उनके द्वारा इसे परिभाषित किया भी गया अथवा नहीं। इस सम्बन्ध में अनुमान का ही सहारा लेना पड़ता है तथा परिणामस्वरूप तद्विषयक जानकारी के लिये, ध्रुपद-लक्षण से सम्बद्ध, ग्रन्थकारों के यत्र-तत्र उद्धृत वचन पर ही निर्भर करना पड़ता है।

संगीत-जगत् में प्रायः यह धारणा रही है कि ध्रुपद-लक्षण-विषयक भावभट्ट का कथन ही सब कुछ है जबकि इस विषय में अन्य ग्रन्थकारों ने भी महत्त्वपूर्ण उल्लेख किये हैं और उनका यह योगदान कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस क्रम में यह उल्लेखनीय है कि ध्रुपद विषयक चर्चा में प्रायः तो विद्वानों के इन उद्धरणों की कोई चर्चा ही नहीं रहती और किंचित् चर्चा रहती भी है तो उसके प्रति एक प्रकार का उदासीन भाव ही रहता है, मात्र यह कहकर उसका मूल्यांकन कर दिया जाता है कि ये कथन अत्यन्त अधूरे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ध्रुपद लक्षण से जुड़ा हुआ भावभट्ट का कथन अत्यन्त विशिष्ट कोटि का है तथा "लक्षण के लक्षण[2]" की कसौटी पर भी अपेक्षाकृत सर्वाधिक पूर्ण है। यह भी सत्य है कि अन्य ग्रन्थकारों के ध्रुपद विषयक कथन अत्यन्त अधूरे है, किन्तु सूक्ष्म अवलोकन से पता चलता है कि ये वचन कई दृष्टियों से बड़े महत्त्व के हैं। वस्तुतः ध्रुपद-लक्षण के परिप्रेक्ष्य में इनकी भूमिका को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रस्तुत निबन्ध का मूल उद्देश्य यत्र-तत्र उद्धृत ग्रन्थकारों की इन उक्तियों का विवरण देते हुये, समीक्षात्मक विवेचन के साथ, उनके महत्त्व को संकेत करना है।

---

१. इस सम्बन्ध में एक ही आधार है मानसिंह-विरचित कथित ग्रन्थ 'मानकुतूहल' का फारसी अनुवाद, द्रष्टव्य फकीरूल्लाह का कथन-मानसिंह और मानकुतूहल, पृ० ९०-९१

२. "लक्षण के लक्षण" की सुस्पष्ट व्याख्या के लिए द्रष्टव्य—श्री केशव मिश्र प्रणीत तर्क-भाषा, व्याख्याकार डा० गजानन शास्त्री मुसलगांवकर, उपोद्घात, पृ० ६, जहाँ लक्षण के लक्षण की व्याप्ति बताते हुए उसके अव्याप्ति, अतिव्याप्ति तथा असम्भव दोषों का निरूपण किया गया है।

ध्रुपद-लक्षण से सम्बद्ध वचन

इस प्रसंग में भावभट्ट सहित आठ विद्वानों के वचन का ग्रहण किया गया है। यथा—

१. मानसिंह तोमर (रागदर्पण के आधार पर अप्रत्यक्ष रूप से मानसिंह के वचन का उल्लेख[1])।
२. तानसेन (तानसेन कृत ध्रुपदों के आधार पर[2])
३. अबुलफजल (आईने अकबरी[3])
४. अहोबल (संगीत पारिजात-प्रबन्ध भेद[4])
५. मिर्जा खाँ (तुहफात-उल-हिन्द[5])
६. भावभट्ट (अनूपसंगीतरत्नाकर, स्वराध्याय, नष्टोद्दिष्ट प्रबोधक-ध्रौपद टीका, अनूपसंगीतरत्नाकर, नृत्याध्याय, अनूपसंगीतांकुशनृत्याध्याय[6])
७. मुहम्मद करम इमाम (मादनउल-मुसिकी[7])
८. पं० वि० ना० भातखण्डे (क्रमिक पुस्तक मालिका, चतुर्थ भाग[8])

आगे, क्रम से इन विद्वानों के कथन पर प्रकाश डाला जायेगा।

१. मानसिंह तोमर

मानसिंह तोमर विरचित मानकुतूहल ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है, किन्तु उस ग्रंथ का फारसी अनुवाद फ़कीरूल्लाह कृत 'रागदर्पण' प्राप्त होता है जिसका डा०

---

१. मानसिंह और मानकुतूहल, पृ० ९०-९१
२. ध्रुवपद और उसका विकास, पृ० २४४ तथा परिशिष्ट "अ" तथा "आ" की ध्रुपद सं० क्रमशः ५१ तथा ६९, साथ ही संगीत चिंतामणि, पृ० ५७।
३. ध्रुवपद और उसका विकास, पृ० २४५ तथा संगीतचिंतामणि पृ० ५७।
४. द्र० डा० कमला नौटियाल का संगीत पारिजात का संशोधित पाठ, लक्ष्यगत प्रबंधाः श्लोक ५९८ अ।
५. (अ) भावभट्ट के गेय ध्रुपद-लक्षण के लिए द्रष्टव्य-अनूपसंगीतरत्नाकर, स्वराध्याय प्रकाशित ग्रन्थ पृ० १५ तथा नष्टोद्दिष्ट प्रबोधक ध्रौपद टीका, पाण्डुलिपि, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, ३४१३, पृ० ४।
   (ब) भावभट्ट के नृत्य-सहकृत ध्रुपद-लक्षण के लिए, द्रष्टव्य-अनूप संगीत रत्नाकर, नृत्याध्याय पाण्डुलिपि, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी ३३६०, पृ० ३५ तथा अनूप संगीतांकुश जयपुर पाण्डुलिपि ७५६४, पृ० १३१।
   (स) द्रष्टव्य-ध्रुपद वार्षिकी ८६ का लेख—"भावभट्ट के ग्रन्थों में ध्रुपद"
६. द्र० ध्रुवपद और उसका विकास, पृ० २४७।
७. द्र० ध्रुपद वार्षिकी १९८७, डा० देलवोआ फ्रांस्वाज 'नलिनी', 'ध्रुपद के पद पक्ष के समीक्षात्मक अध्ययन की सामग्री के स्रोत' एवं सम्पादिका डा० प्रेमलता शर्मा द्वारा किया हुआ सारसंक्षेप, क्रम से पृ० ३५ तथा ६३।
८. द्र० पं० भातखण्डे कृत क्रमिक पुस्तक मालिका चतुर्थ भाग, पृ० ४६-४७।

हरिहर निवास द्विवेदी द्वारा हिन्दी अनुवाद 'मानसिंह और मानकुतूहल' के नाम से किया गया है। इसके माध्यम से ध्रुपद-लक्षण के विषय में मानसिंह की धारणा का अप्रत्यक्ष रूप से जो उल्लेख किया गया है[1], उसे निम्नवत् रखा जा सकता है—

ध्रुपद देशी भाषा में होता है, इसमें चार पंक्तियाँ होती हैं, यह सम्पूर्ण रसों में बाँधा जाता है। इसमें शुद्ध रागों का बन्धन नहीं होता।

२. तानसेन

तानसेन की दो ध्रुपद रचनाओं के आधार पर, उनके द्वारा निर्धारित ध्रुपद का स्वरूप निम्नवत् बनता है—

ध्रुपद को शुद्ध अक्षरों से युक्त होना चाहिए, इसमें चार तुकें होनी चाहिये, नौ रसों में यथावसर किसी एक रस से युक्त होना चाहिये, राग और रस में उनकी प्रकृति की दृष्टि से सामंजस्य भी होना चाहिए।

३. अबुलफजल

आईने अकबरी के माध्यम से अबुल फ़जल द्वारा निर्देशित ध्रुपद सम्बन्धी वचन निम्नवत् है—

ध्रुपद तीन या चार लयबद्ध पंक्तियों में निर्मित पद है, यह आगरा, ग्वालियर बैरी (?) तथा आसपास-प्रदेशों में प्रचलित गीत है।

४. अहोबल

अहोबल ने ध्रुपद के विषय में केवल भाषा सम्बन्धी टिप्पणी की है। यथा—
ध्रुपद उत्तरी (उत्तर भारतीय) भाषाओं में निबद्ध होता है।

५. भावभट्ट

भावभट्ट ने ध्रुपद का लक्षण दो संदर्भों में प्रस्तुत किया है। एक का सम्बन्ध गायन की मुख्य विद्या अर्थात् गेय ध्रुपद से तथा दूसरे का सम्बन्ध नृत्य-सहकृत ध्रुपद से है। इसका विस्तृत विवरण ध्रुपद वार्षिकी १९८६ के अन्तर्गत "भावभट्ट के ग्रंथ और उनमें ध्रुपद" के अन्तर्गत दिया जा चुका है। आगे प्रासंगिक विवेचनार्थ भावभट्ट के दोनों लक्षणों को क्रम से प्रस्तुत किया जा रहा है—

भावभट्ट के गेय-ध्रुपद का लक्षण : ध्रुपद की भाषा संस्कृत या मध्यदेशीय होती है, साहित्य से सुशोभित होता है, इसमें दो या चार वाक्य होते हैं, जिसमें नर-नारी की कथा होती है, शृंगाररस की प्रधानता होती है, यह रागालाप तथा पद से समन्वित होता है, पादान्त अनुप्रास अथवा यमक से मुक्त होता है, इस प्रकार चार पदों (चरणों) में उद्ग्राह, ध्रुव तथा आभोग नामक जहाँ तीन धातुएँ हों, (उत्तम) ध्रुपद कहलाता है।

---

१. द्र० मानसिंह और मानकुतूहल, पृ० ९०-९१।

भावभट्ट के नृत्यसहकृत ध्रुपद का लक्षण : ध्रुपद की रचना प्रायः मध्यदेशीय भाषा में होती है, इसमें उद्ग्राह, ध्रुव तथा आभोग—ये तीन धातुएँ होती हैं, कुछ लोग ध्रुपद को उद्ग्राहरहित, कुछ लोग आभोगरहित तथा कुछ लोग उद्ग्राह तथा आभोग दोनों से रहित अर्थात् "ध्रुव" धातु में ही "ध्रुपद" प्रयुक्त करते हैं।

६ मुसम्मद करम इमाम

वाजिद अलीशाह के आश्रित इस विद्वान् द्वारा ध्रुपद सम्बन्धी उद्धृत कुछ तथ्य निम्नवत् हैं—

ध्रुपद में चार-पाँच चरण होते हैं और दो चरण भी होते हैं। चरण का अर्थ तुक है, प्रथम तुक को 'स्थल' कहते हैं जो जन-साधारण में अस्ताई (स्थायी) कहलाती है, दूसरी तुक को 'अन्तरा' तीसरी तुक को 'भोग' और चौथी तुक को "आभोग" कहते हैं। "तुक" को 'खण्ड' भी कहा जाता है।

७. मिर्जा खाँ

यह पद्य में नहीं है किन्तु अनुप्रासयुक्त है। इसके चार तुक हैं, जिनके नाम हैं, पहला-स्थायी, दूसरा-अन्तरा और अन्तिम दो का (एक ही) नाम है—भोग या आभोग या आहोग। ध्रुपद अधिकतर भाषा (हिन्दी) में गाया जाता है। ध्रुपद के चार प्रकार होते हैं। यथा—तेवट, फुलबन्ध, जुगलबन्ध और रागसागर।

८. पं० भातखण्डे

पं० भातखण्डे ने ध्रुपद की आधुनिक परिभाषा निम्नवत् दी है—

ध्रुपद के चार भाग—स्थायी, अन्तरा, आभोग और संचारी होते हैं और कुछ ध्रुपदों में केवल स्थायी और अन्तरा ही होते हैं। वीर, शृङ्गार और शान्त रस को प्रधानता ध्रुपदों में होती है। इसका ज्ञान चौताल, सूलफाक, झम्पा, तेवरा, ब्रह्म, रुद्र इत्यादि तालों में होता है। ध्रुपद की भाषा उच्च श्रेणी की होनी चाहिए।

ध्रुपद लक्षण से जुड़े कथन–भावभट्ट का वैशिष्ट्य

ध्रुपद के विषय में कहे गये प्रस्तुत विवरण से स्पष्ट है कि भावभट्ट का ध्रुपद विषयक कथन विशिष्ट कोटि का है। वस्तुतः 'ध्रुपद वार्षिकी' १९८६ तथा १९८७ के अंकों में इसकी विस्तृत विवेचना की जा चुकी है[1]। यहाँ प्रसंगवश केवल इतना ही कहना है कि भावभट्ट ही एक ऐसे विद्वान् दिखायी पड़ते हैं, जिन्होंने ध्रुपद का स्वरूप-निर्धारण करते समय यह ध्यान रखा है कि ध्रुपद का प्रयोग दो सन्दर्भों में होता है—पहले का सम्बन्ध नृत्य से है और जिसे 'नृत्यसहकृत ध्रुपद' कह सकते हैं। दो सन्दर्भों से जुड़े रहने के कारण यह भ्रम होना स्वाभाविक था कि इन दोनों लक्षणों में कौन लक्षण प्रमुख है तथा कौन लक्षण गौण; इसका निराकरण भी ग्रंथकार ने स्वयं ही कर

१. द्र० ध्रुपद वार्षिकी १९८६ तथा १९८७ के प्रासंगिक लेख। यथा—"भावभट्ट के ग्रन्थों में ध्रुपद"। 'ध्रुपद और नृत्य' आदि।

दिया है। ग्रन्थकार ने गेय ध्रुपद लक्षण को 'उत्तम' की संज्ञा दी है[1] जबकि नृत्य सहकृत ध्रुपद के लिए ऐसा कुछ भी नहीं कहा है, वहाँ 'गौण' का भाव स्वतः ही अन्वित है; उसके भीतर कई तत्वों का अभाव एवं नियमों का शैथिल्य भी इसी बात की पुष्टि करता है। ध्रुपद के प्रति भावभट्ट का व्यापक दृष्टिकोण (गेय तथा नृत्य दोनों से जुड़ा हुआ) उनकी अद्वितीय उपलब्धि है। इस दृष्टि से किसी अन्य से उनकी तुलना का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि ध्रुपद के प्रति अपने समग्र एवं समन्वित दृष्टि-कोण के कारण वे स्वयं में एक 'उपमान' बन गये हैं।

अब, यदि भावभट्ट के गेय ध्रुपद लक्षण तक ही अपनी चर्चा को सीमित रखें जैसा कि अन्य विद्वानों ने ग्रहण किया है तो भी भावभट्ट एक विशिष्ट कोटि में ही आते हैं। वस्तुतः इसमें सन्देह नहीं कि लक्षण-मूलक अर्थात् अव्याप्ति एवं अतिव्याप्ति का किंचित् दोष वहाँ भी दिखायी पड़ता है[2] फिर भी, अन्य किसी भी विद्वान् की तुलना में भावभट्ट का वचन अधिक पूर्ण है।

ध्रुपद के स्वरूप से सम्बद्ध प्रत्येक वचन ही महत्वपूर्ण

ध्रुपद लक्षण के परिप्रेक्ष्य में भावभट्ट के वैशिष्ट्य के बावजूद अन्य विद्वानों के वचनों की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि ये अपूर्ण होते हुए भी अपने आप में ध्रुपद से जुड़े किसी न किसी महत्त्वपूर्ण बिन्दु को अन्वित किये हुये हैं। जैसा, पहले भी संकेत किया जा चुका है कि सर्वाधिक पूर्ण प्रतीत होने वाली भावभट्ट की परिभाषा भी किंचित् अपूर्ण है। ऐसी स्थिति में विद्वानों के ये वचन मूलतः तो भावभट्ट की परिभाषा से समन्वय स्थापित करते हुये किसी सीमा तक ध्रुपद के पूर्ण स्वरूप के प्रतिस्थापन में सहायक होते हैं साथ ही उनका अवान्तर लाभ यह भी दिखायी देता है कि इनके माध्यम से भावभट्ट के कथन की एकाध अनसुलझी गुत्थियाँ[3] भी सुलझायी जा सकती हैं। इस प्रकार विद्वानों के कथन का महत्त्व निर्विवाद है।

इस महत्व की दृष्टि से ध्रुपद विषयक संपूर्ण वचन (आठों विद्वानों के) को एक साथ रखते हुये उनकी एक तुलनात्मक तालिका प्रस्तुत की जायेगी, जिससे एक दृष्टि में ही यह अभिज्ञान हो सकेगा कि इस परिप्रेक्ष्य में विद्वानों की तुलनात्मक स्थिति क्या है ? अर्थात् किस विद्वान् ने किस बिन्दु को ग्रहण किया अथवा किस बिन्दु को छोड़ दिया, इत्यादि; तथा इनकी समीक्षा से यह भी स्पष्ट हो सकेगा कि इनके द्वारा ऊपर हुये लक्ष्यों की पूर्ति कहाँ तक संभव हो पाती है।

---

१. द्र० गेय ध्रुपद लक्षण की अंतिम पंक्ति जहाँ "........उत्तम" संज्ञा से ग्रन्थकार ने सम्भवतः ध्रुपद के 'उत्तम' कोटि की और संकेत किया है। यथा—उद्ग्राहध्रुवका-भोगोत्तमं ध्रुवपदं स्मृतम्। विवरण-संदर्भ के लिए, द्र०पृ० ७३ पादटिप्पणी सं० ५ अ।

२. इस प्रसंग में द्र० ध्रुपद वार्षिकी १९८६ का निबंध 'भावभट्ट के ग्रन्थों में ध्रुपद', पृ० ८०-८२ तथा ध्रुपदवार्षिकी १९८७ का निबंध 'ध्रुपद के पदपक्ष की समीक्षात्मक अध्ययन की सामग्री के स्रोत' पृ० ३७ तथा ६४-६५।

३. 'प्रबंध' के परिप्रेक्ष्य में 'ध्रुपद' को परिभासित करना, ध्रुपद की भाषा-संस्कृत तथा उसका रस—'श्रृङ्गार' निर्धारित करना आदि, कुछ ऐसे ही तथ्य हैं।

क्रमांक	मानसिंह तोमर	तानसेन	अबुलफजल	अहोबल	भावभट्ट	मुहम्मद करम इमाम	मिर्जा खाँ	पं० भातखण्डे
१—	भाषा-देशी भाषा	—	—	भाषा-उत्तर भारतीय	भाषा-संस्कृत-मध्य-देशीय	—	भाषा-प्राय: 'भाषा' अर्थात्-हिन्दी	भाषा-उच्चश्रेणी की
२—	—	—	—		साहित्य से सुशोभित (साहित्य पक्ष पर बल)	—	—	—
३—	—	—	—	—	पदात्मक (गेय पदों में अन्वित)	—	—	—
४—	चार पंक्तियाँ	चार तुक	तीन या चार पंक्तियां	—	चार पाद (पाद चतुष्टय)	चार-पाँच या दो चरण	चार तुक	—
५—	—	—	—	—	अनुप्रास अथवा यमक से युक्त पादान्त	—	प्रासयुक्त	—
६—	—	—	विषय-विशिष्ट गुण संपन्न व्यक्ति-यों की प्रसंशा	—	विषय-नर नारी प्रेम-कथा	—	—	—
७—	संपूर्ण रस	संपूर्णरस-यथा-वसर प्रयोग	—	—	श्रृंगार रस की प्रधानता	—	—	वीर, श्रृंगार तथा शांत रस की प्रधानता
८—	—	—	—	—	धातुयें-उद्ग्राह, ध्रुव, आभोग	स्थायी, अंतरा, भोग, आभोग	स्थायी, अंतरा भोग-आभोग	स्थायी,अंतरा,आभोग तथा संचारी अथवा केवल स्थायी तथा अंतरा

९—	—	—	—	—	रागालाप (राग विषयक स्वरूप)	—	—	--
१०—	सभी रागों का प्रयोग, शुद्ध रागों का बंधन नहीं	—	—	—	—	—	—	—
११—	—	शुद्धअक्षरोंसे युक्त (रचना)	—	—	—	—	—	—
१२—	—	रागऔर रस में सामंजस्य	—	—	—	—	—	—
१३—	—	—	—	—	—	—	पद्य में नहीं (छंदोबद्धता का बंधन नहीं	—
१४—	—	—	—	—	—	—	ध्रुपदके चार भेद तेवट, फुलबंध, जुगलबंध, राग-सागर।	
१५—	—	—	—	—	—	—	—	ध्रुपद के साथ प्रयुक्त ताल चौताल, सूलफाक, झम्पा, तेवरा, ब्रह्म, रुद्र इत्यादि।

प्रस्तुत तालिका में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि भावभट्ट का ध्रुपद लक्षण अपेक्षाकृत सर्वाधिक बिन्दुओं को अन्वित किये हुए हैं किन्तु इस तालिका में गृहीत अन्य विद्वानों के वचन से प्राप्त संपूर्ण बिन्दुओं के अवलोकन से पता चलता है कि इनमें ध्रुपद विषयक अनेक बिन्दु पृथक् रूप से भी कहे गये हैं जिनका भावभट्ट के ध्रुपदलक्षण में अभाव है। इसीलिए भावभट्ट के ध्रुपदलक्षण में जहाँ मुख्य रूप से आठ (८) बिन्दु हैं वहीं सम्पूर्ण बिन्दुओं के समन्वय से यह संख्या पन्द्रह (१५) तक पहुँच जाती है।

यहाँ कुछ ऐसे बिन्दु भी हैं जो भावभट्ट के कथन की गुत्थी को सुलझाने में भी सहायक सिद्ध हुए हैं। उदाहरण के लिए—भावभट्ट के पूर्ववर्ती अथवा परवर्त्ती, किसी ने भी ध्रुपद की भाषा संस्कृत नहीं बतायी है, इस तालिका में रस विषयक प्रसंग भी स्पष्ट हो गया है—तानसेन ने जहाँ ध्रुपद के अंतर्गत यथावसर सम्पूर्ण रसों के प्रयोग की चर्चा की है वहीं पं० भातखण्डे ने इसे वीर, शृङ्गार तथा शांत रस—प्रधान होने की बात कही है जबकि भावभट्ट ने इसे "शृङ्गार रस-प्रधान" कहकर ही छोड़ दिया है। तानसेन का 'राग और रस में सामंजस्य'—यह बिन्दु भी बड़े महत्त्व का है।

वस्तुतः प्रस्तुत तालिका के आधार पर ऐसे अनेक बिन्दु सामने आये हैं, जिनका पृथक्-पृथक् दृष्टियों से विवेचन किया जाना चाहिये, किन्तु इस लघु लेख में उन सभी को ग्रहण करना संभव नहीं है। इस दृष्टि से ध्रुपद के परिप्रेक्ष्य में नीर-क्षीर विवेक हेतु, इस तालिका के अंतर्गत आये हुए सम्पूर्ण बिन्दुओं की रूप-रेखा मात्र को समन्वित रूप में यथावत् प्रस्तुत करना अधिक उचित होगा—

१. भाषा-देशी भाषा, उत्तर भारतीय भाषा, संस्कृत-मध्यदेशीय, उच्च श्रेणी की भाषा।

२. साहित्य से सुशोभित ध्रुपद रचना।

३. पदात्मकता।

४. चार पंक्तियाँ, चार तुक; तीन या चार पंक्तियाँ; चार पाद; चार-पाँच या दो चरण; चार तुक।

५. अनुप्रास अथवा यमक से युक्त पादान्त; प्रास युक्त (रचना)।

६. विषय-विशिष्ट गुण-सम्पन्न व्यक्तियों की प्रशंसा; नर-नारी प्रेम कथा।

७. रस-सम्पूर्ण रस; शृङ्गार की प्रधानता; वीर शृङ्गार तथा शांत रस की प्रधानता।

८. धातुयें-उद्ग्राह, ध्रुव, आभोग; स्थायी, अंतरा, भोग, आभोग; स्थायी-अंतरा-आभोग-संचारी अथवा केवल स्थायी-अंतरा।

९. रागालाप (राग विषयक स्वरूप)

१०. सभी रागों का प्रयोग, शुद्ध रागों का बंधन नहीं।

११. शुद्ध अक्षरों से युक्त रचना

१२. राग और रस में सामंजस्य

१३. पद्य में नहीं (छन्दोबद्धता का बंधन नहीं)

१४. ध्रुपद के चार भेद—तेवट, फुलबंध, जुगलबंध, रागसागर

१५. ध्रुपद के साथ प्रयुक्त ताल[१६]—चौताल, सूलताल, झम्पा, तेवरा, ब्रह्म, रुद्र, इत्यादि।

●

---

१६. वस्तुतः ये सभी ताल ध्रुपद के प्रसंग में पं० भातखण्डे द्वारा कहे गये हैं और उन्हीं को उद्धृत भी किया गया है। किन्तु एक महत्त्वपूर्ण उल्लेख यह है कि ध्रुपद के उदाहरणों के प्रसंग में भावभट्ट ने कुछ तालों का निर्देश किया है। यथा ध्रुवताल, तृतीय ताल मंठ ताल, अड्डताल आदि। प्रस्तुत चर्चा में इनका ग्रहण इसलिए नहीं किया गया है क्योंकि भावभट्ट ने 'ध्रुपदलक्षण' में ताल का उल्लेख नहीं किया है।

SOME SAYINGS ON THE DEFINITION OF DHRUPAD : ACRITICAL EVALUATION

Sri Adinath Upadhyaya.

(Editor's Summary)

Althouge Mansingh Tomar is accepted to be responsibe for establishing the Dhrupad form, there is scanty material for knowing the exact nature of the form created or crystallized in his time. Bhāva Bhaṭṭa is generally known as the first author who gave a definition of Dhrupad. Although it is true that Bhāva Bhaṭṭa's definition is important on many accounts, there have been other authors who have said something or the other on this topic, but who were generally brushed aside as having given very cryptic or incomplete descriptions or definitions. It is proposed here to evaluate all these authors and do justice to them. They are listed below in a chronological order.

1. Mansingh Tomar (on the basis of Rāga Darpaṇa).
2. Tansen (on the basis of song-texts ascribed to him).
3. Abul Fazal (Ain-e-Akbari).
4. Ahobala (Prabandha-varieties in Saṅgita Pārijāta).
5. Mirza Khan (Tuhfat-ul-Hind).
6. Bhāva Bhaṭṭa (Anūpa Sangīta Ratnākara, Naṣṭoddiṣṭa Prabodhaka, Dhrupad Tīkā, Anūpa Saṅgita Ratnākara Nrityadhya-Anūpa Saṅgītāñkuṣa).
7. Mohammad Karam Imam (Mādan-ul-Mausiqi).
8. V. N. Bhatkhande (Kramik Pustak Mālikā, Vol. 4.).

The exposition of the above authors could be tabulated as follows :

1. **Languuge**.

Man. Deśī or regional language, Aho. North Indian language(s), Bh. Sanskrit, or Madhya-deśiya (of the central region), Mirza. 'Bhāṣā' (Hindi), Bhat. High-styled.

2. **Sections**.

Man. 4 lines; Tan. 4 Tuka-s standing for four lines haveing end-rhyme; Abul. 3 or 4 lines; Bh. 4 feet having end-rhyme. Names of sections : Ungrāha, Dhruva, Ābhoga; Muh. 4-5 or 2 feet. Names of

sections, Sthāī, Antarā, Bhoga, Ābhoga; Mirza. 4 Tuka-s, Names of Sections : Sthaī, Antarā, Bhoga, Ābhoga; Bhat. Names of sections : Sthaī, Antarā, Ābhoga and Sanchārī or only two viz. Sthai and Antarā.

3. **Subject matter**.

Abul. Glorification of men with excellent quality. Bh. Love between men and women.

4. **Rasa**.

Man. all rasa-s. Tān. all rasa-s according to context. Bh. Predominance of Śṛṅgāra rasa. Bhat. Predominance of Vira-Śṛṅgāra and Śānta Rasa.

5. **Rāga**.

Man. use of all rāgas not restricted to Śuddha rāgās; Bh. Rāga Ālāpa.

6. **Structure**.

Tan. text composed with śuddha akṣara-s (pure or unmodified syllables). Mirza. versification or regulation of prosody not necessary.

7. **Types**.

Mirza. Tevaṭ, Phūlbandh, Jugal-bandh, rāga-sāgara.

8. **Tāla-s**.

Bhat. Chautal, Sulabhak, Jhampā, Tevarā, Brahma and Rudra.

It will be seen from the above table that other authors have supplemented or clarified the definitien given by Bhāva Bhaṭṭ. The following points deserve special attention :

(1) Bh. is the only one who talks of the Sanskrit language.

(2) There is difference in the enumeration of rasa-s.

Abereviations.

Abul.	=	Abul Fazal.
Aho.	=	Ahobala.
Bh.	=	Bhāvabhaṭṭa.
Bhat.	=	Bhatkhande, V. N.
Man.	=	Mansingh Tomar.
Mirza.	=	Mirza Khan.
Moh.	=	Mohammed Karam Imam.
Tan.	=	Tansen.

ध्रुपद के तालों में चारताल या चौताल का इतिहास

प्रेमलता शर्मा

भूमिका

आज ध्रुपद में चारताल या चौताल का अत्यन्त प्रमुख स्थान इसी बात से प्रकट है कि इस ताल का नामान्तर "ध्रुपद" है। (द्रष्टव्य संगीत कलाधर, पृ० २१८, जहाँ "चंदताल" के दो नामान्तर कोष्ठक में दिये गए हैं—"चौताल अथवा "ध्रुपद") मौखिक परंपरा में भी आज चौताल को "ध्रुपद" कहने का प्रचार है, किन्तु यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है कि लिखित परंपरा में यह ताल-नाम अठारहवीं शताब्दी के मध्य के कवि और पदकर्ता घनानंद की रचनाओं, उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे चरण में प्रकाशित "रागकल्पद्रुम" और उस की प्रायः समकालीन 'रामपुररागमाला' से पूर्व कहीं प्राप्त नहीं होता। लक्षण-ग्रन्थों की लम्बी परंपरा की प्रायः अंतिम कड़ी जयपुर में रचित "राधागोविन्दसंगीतसार" (अठारहवीं शताब्दी) में भी यह नाम नहीं है।

आज चौताल जिस प्रकार ध्रुपद का प्रमुख ताल है, उसी प्रकार एकताल (विलम्बित) का ख्याल में आधिपत्य है। दोनों की ताली-खाली और मात्रा-संख्या समान होते हुए भी इनका भेद आज लक्ष्य में ठेके के आधार पर निष्पन्न होता है। अतः चौताल के अध्ययन में कहीं-कहीं एकताल की चर्चा अनिवार्यतया उठेगी।

चौताल की दार्शनिक व्याख्या

चौताल या चारताल के नाम से ही यह स्पष्ट है कि इस ताल में चार ताल हैं। इसकी रचना को वैदिक दर्शन से जोड़ते हुए दिवंगत विद्वत्प्रवर स्वनामधन्य श्री रासबिहारी गोस्वामी ने सन् १९७९ के अक्तूबर मास में केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी द्वारा वृन्दावन में आयोजित ध्रुपदमेले के अन्तर्गत विचार-गोष्ठी में निम्नलिखित प्रतिपादन किया था :—

> "चौताल में अंतिम दो ताली और प्रथम ताली, इस प्रकार तीन ताली का एक समूह बनता है और चौथी ताली, जो वास्तव में ताल-चक्र के आरंभ से दूसरी ताली है, तीन तालियों के समूह से पृथक् है और उससे पहले और बाद में खाली है। वेद में इस सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड को समग्र सत्ता का एक "पाद" अर्थात् एक-चतुर्थांश कहा गया है। यथा—
>
> पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।
>
> —(ऋग्वेद १०.७.९०.३)

शेष तीन-चतुर्थांश को द्युलोकगत 'अमृत' कहा है। चौताल की रचना में तीन तालियों के समूह को 'त्रिपाद' अर्थात् तीन-चतुर्थांश का और एक पृथक् ताली को एक 'पाद' का प्रतिनिधि कहा जा सकता है।

इतिहास-सम्बन्धी कल्पना और उसकी परीक्षण-सामग्री

चौताल की यह दार्शनिक व्याख्या अपूर्व है। इसके महत्त्व को देखते हुए इसे यहाँ अंकित करने का लोभ-संवरण नहीं कर सकी। किन्तु लक्षण-ग्रन्थों में इस नाम का इस ताल-रूप के साथ सम्बन्ध प्राप्त न होना अपने आप में चिन्तनीय है। इस ताल-रूप का अठारहवीं शताब्दी में ही आविर्भाव हुआ हो, ऐसा नहीं माना जा सकता। यह कल्पना अवश्य की जा सकती है कि किसी अन्य नाम से यह ताल दीर्घ काल तक प्रचलित रहा होगा। इस कल्पना के परीक्षण के लिए यदि हम लक्षण-ग्रन्थों में से केवल "संगीतरत्नाकर" और "राधागोविन्द संगीतसार" में निरूपित तालों को देख लें और दूसरी ओर लक्ष्य के लिखित रूप के प्रतिनिधि-स्वरूप "किताबे-नौरस" और "सहसरस" का स्मरण करें क्योंकि उनका ध्रुपद-संग्रहों में सर्वप्रथम स्थान है, तो उचित होगा। किन्तु 'किताबे नौरस' में ताल-नाम अंकित ही नहीं हैं, इसलिए सहसरस में अंकित ताल-नामों को देख लें तो पर्याप्त होगा। संक्षेप में भावभट्ट के ग्रन्थों में सकलित पदों पर अंकित ताल-नाम का आकलन और साथ ही पुष्टिमार्गीय कीर्तन-पद्धति की लिखित परंपरा का अवलोकन भी प्रासंगिक होगा।

लक्षण-ग्रन्थों में निरूपित तालों को देखने से पहले निम्नलिखित तथ्य ध्यान में रखना आवश्यक है।

१—केवल देशी तालों का निरूपण ही हमारे लिए प्रासंगिक है।

२—"संगीत रत्नाकर" में द्रुत, लघु, गुरु, प्लुत ये चार अङ्ग और द्रुत, लघु के साथ जुड़कर उनके मूल्य को डेढ़गुना बनाने वाला 'विराम' ही देशी तालों के निरूपण में गृहीत है। "राधा गोविन्द संगीतसार" में द्रुत का आधा "अनुद्रुत" भी गृहीत है। इनके अंकन के लिए निम्नलिखित चिह्न सभी ग्रन्थों में प्राप्त हैं :—

◡ = अनुद्रुत 0 = द्रुत, । = लघु, S = गुरु,

Ś = प्लुत, 0̆ = द्रुत विराम, ि = लघु विराम।

३—जिस ताल में जितने अङ्ग हों, उतनी ताली उसमें रहती हैं। सामान्य रूप से अनुद्रुत को चौथाई मात्रा, द्रुत को आधी, लघु को एक, गुरु को दो, प्लुत को तीन मात्रा का वाचक माना जा सकता है। लघु का मूल्य जाति-भेद से तीन, चार, पाँच, सात अथवा नौ मात्रा मानने की बात ग्रन्थों में है, किन्तु उसकी विस्तृत चर्चा हमारे लिए यहाँ प्रासंगिक नहीं है।

ग्रन्थोक्त लक्षण-परम्परा

(क) संगीत रत्नाकर

संगीतरत्नाकर में १२० देशी तालों में प्रारंभिक पाँच तालों के नाम संख्यावाचक हैं। यथा—आदिताल जिसे प्रथम ताल भी कह सकते हैं, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम ताल, इनमें से चतुर्थताल की ओर हमारा ध्यान जाना स्वाभाविक है, किन्तु उसका स्वरूप दो लघु और एक द्रुत इस प्रकार है, जो कि चौताल के समान नहीं है। चौताल के लिए हमें SS।। इस प्रकार अथवा ।।00 यह रूप चाहिए। लघु का मूल्य दो मात्रा मान लें तो SS।। = 12 मात्रा, और लघु का मूल्य चार मात्रा मान लें तो ।।00 = 12 मात्रा हो जाएगा। यदि कुल मात्रा संख्या ६ भी हो तो कोई समस्या नहीं है, क्योंकि ताल का रूप मात्रा-संख्या से नहीं अपितु अङ्गों के विन्यास से बनता है। चौताल को तीन, छ, बारह, चौबीस किसी भी मात्रा-संख्या से व्यक्त किया जा सकता है। किन्तु प्रथम दो अंग तीसरे चौथे से दुगने होने चाहिए या तीसरा, चौथा अंग पहले दो से आधा होना चाहिए, यह परमावश्यक है। चौताल के समान अंग-विन्यास "संगीतरत्नाकर" के किसी भी ताल में नहीं मिलता, यद्यपि छः मात्रा के एकाधिक ताल वहाँ प्राप्त है। यथा :—

१– अभिनन्द	—	।।00Ś	=	६ मात्रा
२– कुमुद	—	।00।।S	=	६ मात्रा
३– कंदर्प	—	00।SS	=	६ मात्रा
४– कंदुक	—	।।।।S	=	६ मात्रा
५– कोकिलाप्रिय	—	S।Ś	=	६ मात्रा
६– घत्ता	—	।।00।S	=	६ मात्रा
७– त्रिभङ्गी	—	।।SS	=	६ मात्रा
८– त्रिभिन्न	—	।SŚ	=	६ मात्रा
९– परिक्रम	—	00।SS	=	६ मात्रा
१०– बिन्दुमाली	—	S0000S	=	६ मात्रा
११– रतिलील	—	।।SS	=	६ मात्रा
१२– वनमालि	—	0000।00S	=	६ मात्रा
१३– विलोकित	—	S00Ś	=	६ मात्रा
१४– शरभलील	—	।।0000।।	=	६ मात्रा
१५– श्रीकीर्ति	—	।।SS	=	६ मात्रा

ऊपर दिखाए गए तालों में से सातवाँ, ग्यारहवाँ, पन्द्रहवाँ ताल चौताल से ठीक उल्टा है। यानि आरंभ में जो दो अंग हैं उनसे दुगने तीसरे और चौथे अंग हैं। एक रोचक तथ्य यहाँ स्मरणीय है और वह यह कि नन्दिकेश्वर के ग्रन्थ "भारतार्णव" में श्रीकीर्ति ताल का क्रम सं० र० से उल्टा यानी SS।। है, जिससे चौताल का पूर्ण साम्य है। "भारतार्णव" का काल "संगीतरत्नाकर" के ठीक बाद का है, ऐसा अनुमान किया

जाता है। उसमें, "श्रीकीर्ति" ताल का चौताल के साथ साम्य हमारी खोज में बहुत सहायक नहीं है, क्योंकि श्रीकीर्ति ताल का नाम किसी भी ध्रुपद संग्रह में नहीं मिलता।

(ख) राधा गोविन्द संगीतसार

इस ग्रन्थ में प्राय: २०० देशी तालों का निरूपण है और प्रत्येक ताल के नाम दो प्रकार से दिए गए हैं। एक तो उसका रूढ़ नाम जैसे—अठताली और दूसरा ताल में विहित तालियों की संख्या का वाचक नाम जैसे कि अठताली में चारताली होने के कारण उसे चौताला कहा है। तालियों की संख्या १ से ४४ तक मिलती है। जिन तालों में चारताली का विधान है वे इस प्रकार हैं :—

१– अठताली	—	|00|	=	३, ६, १२ मात्रा
२– कंकाल	—	|SS|	=	६ मात्रा

(संगीतरत्नाकर में "कंकाल" का स्वरूप भिन्न है, वहाँ उसके चार प्रकार बताए गए हैं और चारों में कुल मात्रा-संख्या ५ बैठती है।)

३– कामधेनु	—	ŚŚŚŚ	=	१२ मात्रा
४– गजझंपा	—	Ś000̆	=	३ ३/४ मात्रा
५– ग्रहताल	—	SŚŚS	=	१० मात्रा
६– गारुगी	—	0000̆	=	२ १/४ मात्रा
७– चक्रताल	—	|||S	=	५ मात्रा
८– चतुर्मुख	—	|S|Ś	=	७ मात्रा
९– चतुस्ताल	—	000|	=	२ १/२ मात्रा
१०– चित्रताल	—	◡◡◡◡	=	१ मात्रा
११– चित्रताल (मंठ का १८वाँ भेद)	—	00Ś0	=	४ १/२ मात्रा
१२– जयमंगल	—	|||0	=	३ १/२ मात्रा
१३– तारताल	—	00̆||	=	३ १/४ मात्रा
१४– तारप्रतिताल (मंठ का १९वाँ भेद)	—	00||	=	३ मात्रा
१५– तुरंगलील	—	00̄00	=	२ १/४ मात्रा
१६– धनंजय (मंठ का चौथा प्रकार	—	0|SŚ	=	६ १/२ मात्रा
१७– नर्तकताल	—	0|0|̆	=	३ १/२ मात्रा
१८– निशंकलील	—	ŚŚSS	=	१० मात्रा
१९– पद्मा	—	||S|	=	५ मात्रा

२०– प्रतापशेखर	—	Ś000ˤ	=	४$\frac{3}{4}$ मात्रा
२१– रतिताल	—	||SS	=	६ मात्रा
२२– रतिताल	—	|SSS	=	७ मात्रा
२३– वर्णभिन्न	—	00|S	=	४ मात्रा
२३– विलोकित	—	S00Ś	=	६ मात्रा
२५– विष्णुताल	—	S||Ś	=	७ मात्रा
२६– वीरविक्रम	—	|00S	=	४ मात्रा
२७– संचय	—	0|||	=	३$\frac{1}{2}$ मात्रा
२८– सिंहताल	—	|000	=	२$\frac{1}{2}$ मात्रा

ऊपर लिखे सभी तालों में चार-चार अंग हैं और इसलिए इन सभी को चौताला भी कहा गया है, किन्तु हमारे आज के चौताल का स्वरूप इनमें से एक में भी नहीं मिलता। केवल रतिताल (प्रथम प्रकार) का रूप चौताल से उल्टा है। इस प्रकार इस ग्रंथ में भी चौताला संज्ञा चार ताली वाले तालों के लिए रहते हुए भी हमारे चौताल का साम्य उपलब्ध नहीं है।

इस प्रकार हमने संगीतरत्नाकर में छः मात्रा की दृष्टि से और राधा-गोविन्द-संगीत-सार में चार ताली की दृष्टि से तालों का परीक्षण करके देखा। यह सत्य है कि चार ताली वाले ताल संगीतरत्नाकर में भी हैं और छः मात्रा वाले ताल "राधागोविन्द-संगीतसार" में भी हैं। हमने केवल परीक्षण के लिए मात्रा-संख्या और ताली-संख्या को क्रमशः इन दोनों ग्रन्थों में आधार बनाया है।

सालग-सूड प्रबन्धों की ताल-व्यवस्था

सालग सूड प्रबन्ध सात हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—ध्रुव, मंठ, प्रतिमंठ, निःसारु, अड्डताल, रासक और एकताली। इनमें से ध्रुव प्रबन्ध के साथ ध्रुपद का सम्बन्ध जोड़ने की कोशिश प्रायः की जाती है। इस सम्बन्ध-स्थापन के बारे में संक्षेप में यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि इसका पहला आधार तो नाम-साम्य है और दूसरे उदग्राह के प्रथम खण्ड की 'ध्रुव' संज्ञा होने के कारण ध्रुव को यदि आज का स्थायी मान लें तो उद्ग्राह के तीसरे खण्ड को, जो कि कुछ ऊंचा है, अन्तरा मान सकते हैं, यद्यपि इसको अन्तर संज्ञा वहाँ है नहीं। दो खण्ड वाले अभोग के पहले खण्ड को आज का संचारी और दूसरे खण्ड को, जो कि उच्चतर है, आज का आभोग कह सकते हैं। इस कल्पना का परीक्षण यहाँ हमारा उद्देश्य नहीं है, हमें तो केवल सालगसूड प्रबन्धों की ताल-व्यवस्था में चौताल का रूप प्राप्त है या नहीं, इसी का परीक्षण करना है। इस परीक्षण की प्रासंगिकता यही है कि प्रबन्धसमूह में सालग-सूड प्रबन्धों के साथ ध्रुपद का सहज सम्बन्ध माना जाता है। अन्य प्रबन्ध-भेदों की तुलना में सालग-सूड-प्रबन्धों में, विशेषतः ध्रुव प्रबन्ध में ध्रुव धातु की विशेष स्थिति के बारे

में ध्रुपद वार्षिकी के द्वितीय अंक में हम विशेष विचार कर चुके हैं। (द्रष्टव्य 'ध्रुपद में ध्रुव' शीर्षक लेख)।

आज कर्णाटक ताल पद्धति में सालग-सूड-प्रबन्धों में से कुछ नाम 'सप्त सूड' तालों में प्रसिद्ध है। ये नाम हैं ध्रुव, मठ्य, जिसे मंठ का अपभ्रंश मान सकते हैं और एकताल या एकताली। किन्तु इन सात प्रबन्धों का संगीतरत्नाकर में जो निरूपण मिलता है, उसके अनुसार 'ध्रुव' नाम का कोई ताल नहीं हैं, शेष ६ प्रबन्धों के नाम तालों के अनुसार ही रखे गये हैं। ध्रुव में निम्नलिखित १६ भेद हैं जो उस प्रबन्ध के दो अथवा सब खण्डों में प्रयुक्त अक्षर-संख्या, ग्यारह अक्षर से शुरू कर सत्ताईस अक्षरों के आधार पर बने हैं। इनमें से प्रत्येक भेद के सात ताल का पृथक् पृथक् उल्लेख इस प्रकार है :—

भेदनाम	ताल	रस	फल
१. जयन्त	आदिताल	शृङ्गार	नेता, श्रोता, गाता की आयु और श्रीवृद्धि
२. शेखर	निःसारु	वीर	ऋद्धि, सौभाग्य
३. उत्साह	प्रतिमंठ	हास्य	वंश-वृद्धि
४. मधुर	हयलील	करुण	भोग
५. निर्मल	क्रीडा	शृङ्गार	प्रभा-वृद्धि
६. कुन्तल	लघुशेखर	अद्‌भुत	अभीष्ट-लाभ
७. कामल	झंपा	विप्रलम्भ	सिद्धि
८. चार	निःसारु	वीर	हर्षोत्कर्ष
९. नन्द	एकताली	वीर, शृङ्गार	अष्टसिद्धि
१०. चन्द्रशेखर	प्रतिमंठ	वीर, हास्य, शृंगार	श्रोता, गाता को अभीष्ट फल-लाभ
११. कामोद	प्रतिमंठ	शृङ्गार	अभीष्ट काम-लाभ
१२. विजय	द्वितीयताल	हास्य	नेता की आयु
१३. कंदर्प	आदिताल	करुण, हास्य, शृङ्गार	भोग
१४. जयमंगल	क्रीडा	शृंगार, वीर	जय, उत्साह
१५. तिलक	एकताली	वीर, शृङ्गार	—
१६. ललित	प्रतिमंठ	शृङ्गार	सर्वसिद्धि

ध्यान देने योग्य बात यह है कि ध्रुव-प्रबन्ध के १६ भेदों के लिए उल्लिखित ताल-नामों में कोई ध्रुव नामक ताल नहीं है। अन्य सालग-सूड-प्रबन्ध के नाम-साम्य वाले ताल प्रतिमंठ, निःसारु और एकताली ये तीन ही हैं, शेष ताल-नाम 'संगीतरत्नाकर' के देशी ताल-प्रकरण में उपलब्ध हैं। ध्रुव-प्रबन्ध के भेदों के लिए विहित ताल-नामों में से एकताली और आदिताल केवल एक-एक ताली वाले ताल हैं।

लक्ष्यगत पद-संग्रहों में ताल-नाम

'सहसरस' में संकलित पदों का ताल-नाम की दृष्टि से निम्नलिखित विश्लेषण प्रस्तुत है :—

१— **एकताली**—इसके साथ प्रायः सर्वत्र 'परसिद्ध' (प्रसिद्ध) विशेषण लगाया हुआ मिलता है। इसका उल्लेख सबसे अधिक संख्या में है।

२—आदताल (आदिताल) आदतालमशहूर ब अठताला

कहीं-कहीं केवल 'अठताला' लिखा है और कहीं-कहीं 'आदताल-मशहूर ब अठताला' लिखा है। ये दो नाम सम्मिलित रूप से संख्या की दृष्टि से एकताली के बाद रखे जा सकते हैं। आदिताल ही अठताला के नाम से मशहूर था, यह उल्लेख ध्यान देने योग्य है। अठताल का आज की कर्णाटक पद्धति में स्वीकृत 'अड्डुताल' के साथ नाम-साम्य भी स्मरणीय है। अड्डुताल का स्वरूप ठीक चौताल जैसा है यथा = ११०० = ३ मात्रा। लघु का मूल्य चार मात्रा मान लेने से १२ मात्रा का चौताल बन जायगा। अड्डुताल की चतुरश्र जाति में यही रूप बनता है, किन्तु यह रूप कर्णाटक संगीत में आज प्रायः प्रयोग में नहीं है। अड्डुताल की खण्ड जाति यानि ५ + ५ + २ + २ = १४ अक्षर या मात्रा ही विशेष प्रचार में है।

३, ४—समताल और झूमरताल

इन दोनों में प्रायः एक-सी संख्या के पद में मिलते हैं। समताल तो संगीत रत्नाकर में है, किन्तु झूमर-ताल उसमें नहीं है।

५—कमलमंठ मशहूर ब फाख्ताई

इसका उल्लेख प्रायः चालीस पदों पर मिलता है। मंठ नाम के सालग-सूड प्रबन्ध के ६ भेदों में से कमलमंठ छठा भेद है और उसका ताल रूप है 0̆0̆।। = ३½ मात्रा। लघु का मूल्य दो या चार मान लें तो ७ या १४ मात्रायें हो जायेंगी। मंठताल के दस भेदों में से एक कमलमंठ नामक भेद 'संगीतराज' में इसी रूप में वर्णित है। यह कमलमंठ ताल 'फाख्ताई' के नाम से प्रसिद्ध था। यह उल्लेख अपने स्थान पर मूल्यवान् है।

६—जतलगन

यह 'यतिलग्न' का सीधा अपभ्रंश है और 'यतिलग्न' संगीत रत्नाकर के देशी तालों में है। प्रायः पैंतीस पदों पर यह नाम है।

७—चतुर्थताल

इसका उल्लेख केवल आठ पदों पर मिलता है और संगीतरत्नाकर में यह ताल है।

८—झपताल

इसका उल्लेख केवल पाँच तालों पर है और संगीतरत्नाकर में 'झंपा' ताल-नाम है।

९—तृतीयताल

इसका उल्लेख केवल एक बार हुआ और यह भी सं० र० में है।

१०—परतताल

यह 'प्रतिताल' का अपभ्रंश है और सं० र० में मिलता है, केवल एक पद पर इसका उल्लेख है।

'सहसरस' में प्राप्त ताल-नामों की इस तालिका से यह स्पष्ट है कि इसमें "चौताल" नाम को कहीं स्थान नहीं है और एकताली के साथ "प्रसिद्ध" विशेषण है।

भावभट्ट के ग्रन्थों 'अनूपसंगीत रत्नाकर' और 'अनूप संगीत विलास' के वे अंश जिनमें गेय पदों का संकलन है, पाण्डुलिपियों में ही उपलब्ध हैं। इन पाण्डुलिपियों का विवरण ध्रुपद वार्षिकी के प्रथम अंक में श्री आदिनाथ उपाध्याय के लेख में दिया जा चुका है। इन पाण्डुलिपियों का ताल-नाम की दृष्टि से विश्लेषण नहीं किया जा सका है केवल नमूने के लिए जिन थोड़े से ताल-नामों का संकलन किया जा सका है, उनमें से अड्डताल सर्वाधिक संख्या में है; अन्य कुछ नाम हैं––ध्रुवताल, तृतीयताल, एकताल, प्रतिमंठ इत्यादि। चौताल का सर्वथा अभाव यहाँ भी स्पष्ट है। अष्टछापीय कीर्तन-पद्धति की पोथियों में भी चौताल नाम प्राप्त नहीं है और ऐसा माना जाता है कि 'अठताल' ही चौताल का पूर्व-नाम है। (द्रष्टव्य––'अष्टछापीय भक्ति संगीत : उद्भव और विकास' भाग-२, पृ० ९७)।

बीसवीं शताब्दी में प्रकाशित चौताल-सम्बन्धी चिन्तन

बीसवीं शताब्दी के दो ग्रन्थों को इस प्रसंग में देखना पर्याप्त होगा।

१—गोस्वामी पन्नालाल का नाद-विनोद जो कि दिल्ली से १९०० के आसपास प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ का रचना-स्थल उत्तर-भारत का केन्द्र दिल्ली होते हुए भी इसमें ताल के प्रसंग में कर्णाटक और हिन्दुस्तानी पद्धति का कोई भेद दिखाई नहीं देता। इसमें जिन सात तालों को मुख्य कहा गया है, वे ही आज कर्णाटक पद्धति के मुख्य ताल हैं। इन सात तालों का स्वरूप पृ० २९० पर एक तालिका में बताया गया है और प्रत्येक की पाँच जातियाँ भी कही हैं। यह तालिका बहुत रोचक है क्योंकि इसमें प्रत्येक ताल के साथ हिन्दुस्तानी पद्धति के एक-एक ताल का तादात्म्य दिखाया गया है। किन्तु कर्णाटक या हिन्दुस्तानी नाम का प्रयोग कहीं भी नहीं है। अठताल यानी चौताला ऐसा लिखकर अठताल की चतुरश्र जाति में चार-चार-दो-दो इस प्रकार का मात्रा-विन्यास दिखाया गया है, जो कि चौताल के लिए बिल्कुल ठीक है। सातवें ताल का नाम एकताल यानी एकताला ऐसा कहा है। इसमें त्र्यश्र जाति की तीन मात्राएँ लेकर

प्रत्येक मात्रा को चौगुना किया जाए तो ३ × ४ = १२ मात्रा हो जायेगी और एकताल का स्वरूप बन जाएगा। फिर भी यह प्रश्न रह जाएगा कि मात्रा-संख्या चौताल के साथ समान होने पर भी एकताले को सात तालों में से एकताल के साथ जोड़ना क्या केवल नाम-साम्य के कारण ही है या और किसी कारणवश ?

२—बीसवीं शताब्दी का दूसरा विचारणीय ग्रन्थ है, के० वासुदेव शास्त्री का 'संगीतशास्त्र' जो १९५८ में प्रकाशित हुआ है। इसमें पृ० २२३ पर एकताल और चौताल के लिए निम्नलिखित उल्लेख है :—

"एकताल का प्राचीन अंग एक लघु है। उसकी त्र्यश्रजाति में ३ मात्राएं हैं। हरएक मात्रा को चौगुनी करके पहली दो मात्राओं के लिए एक-एक पात और तीसरी मात्रा को दो पात दिए गये हैं। इसी रीति से एकताल का निर्माण हुआ है। चौताल प्राचीन अड्डताल से उत्पन्न हुआ है। अड्डताल के अंग ११०० हैं। इसकी चतुरश्रजाति में ४ + ४ + २ + २ = १२ मात्राएं हैं। पर अंगों का अनुसरण करके पात दिए गये हैं। हर एक लघु का पात और एक खाली और एक द्रुत का एक पात दिया गया है।"

आज एकताल और चौताल का भेद केवल ठेके से सिद्ध है, दोनों की मात्रा-संख्या और ताली-खाली बराबर है। किन्तु इनमें से एकताल का सप्तसूड तालों में से एकताली के साथ और चौताल का अठताल या अड्डताल के साथ सम्बन्ध बैठाए जाने का प्रमाण उत्तर भारत के ग्रन्थ 'नाद-विनोद' और दक्षिण भारत के विद्वान् के० वासुदेव शास्त्री के प्रतिपादन में मिलता है। 'नाद-विनोद' में पृ० ३०२ पर यह कहा है कि एकताल और चौताले में से प्रत्येक में १२ मात्राएं हैं और इनके ठेके के बोल भी १२ हैं और चार बोलों पर एक-एक ताल देने से बराबरी पर तीन ताल पड़ते हैं। फिर यह कहा है कि चौताल और एकताल में अन्तर इतना ही है कि चौताल में पिछली यानी आखिरी ताल के चार बोलों के दो टुकड़े कर के दोनों पर ताली दी जाती है। वास्तव में आज तो एकताल में भी यही किया जाता है। हो सकता है कि नाद-विनोद के समय शायद एकताल को ठेके से ही चक्र-बद्ध किया जाता होगा और उसकी तीनों तालियाँ समान अन्तर पर पड़ती होंगी।

विषय-संग्रह

चौताल के इतिहास के अध्ययन के लिए निम्नलिखित तथ्य हमने ऊपर संकलित किये हैं :—

१—लक्षण ग्रन्थों की परम्परा में यह नाम १८वीं शताब्दी में भी प्राप्त नहीं है।

२—लक्ष्यगत पद-संग्रहों में भी यह नाम १८वीं शताब्दी से पूर्व प्राप्त नहीं होता।

३—लक्ष्यगत पद-संग्रहों में एकताली और अठताल या अड्डताल का उल्लेख सर्वाधिक संख्या में है। अठताल का मूल रूप आदिताल कहा गया है।

४—बीसवीं शताब्दी के दो प्रमुख लेखकों ने एकताल और चौताल की विभिन्नता दो प्रकार से स्थापित की है। नाद-विनोद में एकताल में चार-चार मात्रा या अक्षर पर ताली बताकर चौताल में तीसरे-चतुष्क को दो-दो में बाँट कर दो ताली कही गयी है। दूसरी ओर के० वासुदेव शास्त्री ने दोनों तालों की ताली-खाली समान रूप से बताकर भी एकताल को एकताली से और चौताल को अड्डताल से उत्पन्न बताया है। एकताली तो ग्रन्थोक्त सप्त सालगसूड प्रबन्धों में प्रबन्ध भेद के ताल-वाचक नामों में है, किन्तु अठताल या अड्डताल इन सात नामों से स्वतन्त्र यानी प्रबन्ध-भेदों से स्वतन्त्र रूप से देशी तालों के अन्तर्गत संगीतरत्नाकर में वर्णित है और इसका स्वरूप है 0।। = २; या ५ मात्रा। कर्णाटक पद्धति में स्वीकृत सप्तसूद तालों में जो अड्डताल है उसका स्वरूप इससे भिन्न और चौताल के सदृश है। राधागोविन्द संगीतसार में अठताली (चौताला) का स्वरूप ।00। = ३, ६, १२ मात्रा है। किन्तु इसका अंग-विन्यास चौताल से भिन्न है।

ऊपर उद्धृत तथ्यों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :—

१—आदिताल का स्वरूप एक लघु है (सं० र० ५।२६१) इसी को लोक में रास कहा जाता है ऐसा भी वहाँ उल्लेख है। यदि आदिताल ही कालान्तर में अठताले के रूप में प्रसिद्ध हो गया है तो यही मानना होगा कि एक लघु को त्र्यश्रजाति में तीन मात्रा का बनाकर और फिर प्रत्येक मात्रा को चौगुनी करके पहली दो मात्राओं के लिए एक-एक पात (ताली) और तीसरी मात्रा के दो खण्ड करके प्रत्येक पर एक-एक पात (ताली) इस प्रकार चारताली वाले चौताल का निर्माण हुआ होगा। देशी तालों में निःशब्द क्रिया अलग से कहीं नहीं जाती है, इसलिए किसी भी ताल में जो अंग अपेक्षाकृत बड़ा होता है उसके दो खण्ड करके पहले खण्ड में ताली और दूसरे में खाली रख ली जाती है।

२—एकताली का उल्लेख सं० र० में दो प्रकार से है, एक तो देशी तालों में और दूसरे सप्त सालगसूड-प्रबन्धों में। देशी तालों में एकताली का स्वरूप है केवल एक द्रुत यानि आधी मात्रा; इसे आदिताल के समक्ष ही रखा जा सकता है, जिसका स्वरूप एक लघु है। इसलिये चौताल का उद्भव आदिताल या अठताले से मानें या एक-ताली से, बात एक ही है। सप्तसालग-सूड प्रबन्धों में अन्तिम प्रबन्ध है एकताली ताल का नामोल्लेख मात्र है, उसका स्वरूप नहीं दिया गया है। कर्णाटक पद्धति के सप्तसूड तालों में भी एकताल सातवाँ ताल है और उसका स्वरूप एक लघु ही है। इस प्रकार देशी तालों का आदिताल, एकताली और सप्त-सालगसूड प्रबन्धों में एकताली ये तीनों समान हैं, किन्तु "सहसरस" में प्रसिद्ध एकताली और आदताल मशहूर व अठताला इस प्रकार एकताली और आदिताल को पृथक् रखा गया है। अतः यदि इन दोनों में से किसी एक को चौताल का मूल रूप माना जाए तो दूसरे का रूप क्या समझा जाये, यह प्रश्न रह ही जायेगा। कर्णाटक पद्धति में स्वीकृत अड्डताल के नाम-साम्य के आधार पर अठताले को ही चौताल का मूल रूप माने

जाने का पलड़ा भारी पड़ता है। सहसरस के साक्ष्य के आधार पर एकताली और अठताला दोनों को एक साथ चौताल का मूल रूप मानना सम्भव नहीं है, दो में से एक को चुनना हो तो अठताला का दावा एकताली की अपेक्षा अधिक है। अष्टछापीय कीर्तन-पद्धति का साक्ष्य भी अठताले के पक्ष में है। इसका नामान्तर चौताल कैसे हो गया होगा, इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन नहीं है। तालों का नामकरण ताली-संख्या के आधार पर करने की कोई परम्परा अवश्य रही होगी, जिसका अंकन "राधागोविन्द संगीतसार" में मिलता है। इसके अनुसार अठताला या अड्डताल में चार ताली होने के कारण उसका नामान्तर चौताल हो जाना कोई असम्भव नहीं है। तीनताल या त्रिताला भी इसी परम्परा का उदाहरण है।

चौताल की जाति

ताल के प्रसंग में जाति शब्द का प्रयोग संभवतः पंद्रहवीं शताब्दी से पहले नहीं हुआ है। संगीतसूर्योदय में ताल के दशप्राणों के अन्तर्गत जाति का उल्लेख हुआ है, किन्तु ताट्यशास्त्र में जाति शब्द के प्रयोग के बिना ही ताल के मूलभूत दो भेदों का उल्लेख मिलता है, चतुरश्र और त्र्यस्र, जिनका शब्दार्थ है चौकोना और तिकोना। चार कला (गुरु) वाला चच्चत्पुट चतुरश्र है और तीन कला वाला चाचपुट त्र्यश्र है। पाँच मार्ग तालों में से शेष तीन ताल भी त्र्यश्र ही हैं। पाँचों का स्वरूप इस प्रकार है :—

चच्चत्पुट	—	SS।Ś	= चार गुरु या कला
चाचतुट	—	S।।S	= तीन गुरु या कला
षट्पितापुत्रक या उत्तर या पंचपाणि	—	Ś।SS।Ś	= छः गुरु या कला
संपक्वेष्टाक	—	ŚSSSŚ	= छः गुरु या कला
उद्घट्ट	—	SSS	= तीन गुरु या कला

इस प्रकार चार, आठ, सोलह कला वाला ताल चतुरश्र और तीन, छ, बारह, चौबीस आदि कला वाला ताल त्र्यश्र है। इस सिद्धान्त के अनुसार चौताल की जाति त्र्यश्र होगी। किन्तु संगीतकला-धर में किसी भी ताल की जाति उसके प्रथमखण्ड की मात्रा-संख्या के अनुसार निश्चित की गयी है और तदनुसार चौताल को जाति चतस्र (चतुरश्र) बताई है। यह ठोक है कि चौताल में तीन बार चार-चार मात्राओं का समूह आता है और चार मात्राओं को ही मुख्य मानें तो उसे चतुरश्र कहा जा सकता है, किन्तु प्राचीन सिद्धान्त के अनुसार चार को दो या चार या आठ से गुणा करें तभी चतुरश्र जाति की सत्ता सिद्ध होतो है। चार को तीन से गुणा करने पर तो त्र्यश्र ही निष्पन्न होता है।

एक बात यहाँ अवश्य ध्यान देने योग्य है और वह यह कि चाचपुट त्र्यश्र ताल होते हुए भी चार अंगों से बना है और उसके अंग चौताल के सदृश ही हैं यानि दो

गुरु, दो लघु ही हैं। केवल विन्यास का भेद है। ध्यान देने की बात यह है कि चाचपुट शेष तीन त्र्यश्र तालों से इस बात में भिन्न है कि इसमें अंगों की संख्या चार है, जबकि उनमें छ, पाँच और तीन है। इस प्रकार चाचपुट की कुल कला-संख्या के अनुसार तो उसकी त्र्यश्र जाति ही सिद्ध होती है, किन्तु अंग-संख्या चार होने के कारण वह एक प्रकार से चतुरश्र के साथ मैत्र-भाव धारण करता है। यही बात चौताल में भी लागू होती है। बल्कि यहाँ तक कहा जा सकता है कि चाचपुट के अंग-विन्यास को उलटकर यदि गुरु-लघु-लघु-गुरु के स्थान पर गुरु-गुरु-लघु-लघु कर दिया जाए तो उसकी त्र्यश्रता और भी कम होकर चतुरश्र की सीमा-रेखा पर पहुँच जायगी। असंभव नहीं है कि अठताल या अड्डताल का निर्माण चाचपुट के ही उलट-फेर से हुआ हो। इस कल्पना से उसके आधिपत्य को सुदीर्घ परंपरा की दृढ़ नींव प्राप्त हो जाती है।

उपसंहार

चौताल के इतिहास में रूप-भेद और नाम-भेद दोनों प्रक्रियाओं का मिला-जुला रूप हमने देखा। लिखित और मौखिक परंपराओं को आमने-सामने रख कर देखने का यह एक विनम्र प्रयास मात्र है।

परिशिष्ट

ध्रुपद परंपरा में ब्रह्मताल

आज ध्रुपद की मौखिक परंपरा में चौताल, सूल और तीव्रा तो अति प्रचलित हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त ब्रह्मताल, लक्ष्मी ताल, शेष ताल, रुद्र-तालादि भी यदा-कदा सुनने में आते हैं। इनमें से ब्रह्म-ताल का विशेष महत्त्व इसलिए है कि वह लक्षण-ग्रंथों की परम्परा में भी ठीक उसी रूप में अंकित है जिस रूप में आज उसे प्रयोग में लाया जाता है। संगीतपारिजात में ब्रह्मताल का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—|0|00|000|; ठीक यही लक्षण राधागोविन्दसंगीतसार में भी मिलता है और इसमें अंगों की संख्या दस होने के कारण वहाँ उसे दशताला भी कहा गया है आज ब्रह्मताल को इस भाषा में समझाया जाता है कि इसमें एक ताली फिर खाली, दो ताली फिर खाली और तीन ताली फिर खाली है। यह केवल भाषा का भेद है, यही रूप ग्रन्थोक्त लक्षण से भी प्राप्त होता है। क्योंकि लघु उसमें बड़ा अंग है, इसलिए प्रत्येक लघु के बाद खाली पड़ेगी। इस प्रकार दस ताली और चार खाली से यह ताल बनता है। लघु का मूल्य यदि दो मात्रा मानें तो इसको कुल मात्रा-संख्या १४ होगी और लघु का मूल्य चार मात्रा माने तो कुल मात्रा-संख्या २८ होगी। इसीलिए आज गुरु लोग कह देते हैं कि इस ताल को चौदह मात्रा में भी गिन सकते हैं और अट्ठाईस में भी। इस प्रकार ब्रह्मताल को हम लिखित और मौखिक परम्परा की अन्विति के सुन्दर उदाहरण के रूप में देख सकते हैं। यह बात अवश्य शोचनीय है कि आज इस ताल का वादन तो पखावज पर सुनने में आता भी है, किन्तु इसमें गायन प्रायः नहीं किया जाता।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

१–अनूप संगीत रत्नाकर	भावभट्ट कृत	(अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में सुरक्षित पांडुलिपि)
२–अनूप संगीत विलास	भावभट्ट कृत	(अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में सुरक्षित पांडुलिपि)
३–अष्टछापीय भक्ति संगीत उद्भव और विकास भाग–२	चंपकलाल छ० नायक	अष्टछाप संगीत कला केन्द्र, अहमदाबाद
४–ऋग्वेद संहिता (चतुर्थखंड) (सायण-भाष्य-सहित)	एन. एस. सोनटक्के और सी. जी. काशीकर	तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, १९४६
५–किताबे नौरस	इब्राहीम आदिल शाह, द्वितीय कृत संपादक–नज़ीर अहमद	भारतीय कला केन्द्र, १९५६
६–घनानन्द ग्रंथावली	संपादक–विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	वाणी-वितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी, संवत् २००९
७–नाट्यशास्त्र (चतुर्थ खंड)	भरतमुनि कृत	गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज़ १९६४
८–नाद-विनोद	गोस्वामी पन्नालाल	दिल्ली (१९०० के आसपास)
९–रागकल्पद्रुम (प्रथम खंड)	कृष्णानन्द व्यास	बंगीय साहित्य परिषद्, १९१४
१०–राधागोविन्द संगीतसार	जयपुर नरेश महाराज प्रताप सिंह देव कृत	गायन समाज, पूना १९१०
११–संगीतकलाधर (द्वितीय संस्करण)	डाह्यालाल शिवराम	भावनगर, १९३८
१२–संगीत पारिजात	अहोबलकृत	(अप्रकाशित संशोधित पाठ जो कि श्रीमती कमलादेवी नौटियाल द्वारा संगीत शास्त्र विभाग, का. हि. वि. वि. में पी-एच. डी. की उपाधि हेतु शोध-प्रबन्ध के अंग के रूप में १९८२ में प्रस्तुत किया किया।)

१३–संगीत शास्त्र	के. वासुदेव शास्त्री	प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उ० प्र० १९५८।
१४–संगीतरत्नाकर	शार्ङ्गदेव कृत	द्वितीय खण्ड-अडयार संस्करण १९४४। तृतीय खंड-अडयार संस्करण, १९८६।
१५–संगीत सूर्योदय	श्री लक्ष्मीनारायण संपादक–कामता प्रसाद त्रिपाठी	इन्दिरा कला संगीत वि० वि० खैरागढ़ (म० प्र०) १९८६।
१६–सहसरस	(बख्शू के ध्रुपदों का संग्रह संपादिका प्रो० प्रेमलता शर्मा	संगीत नाटक अकादमी, १९७२

THE HISTORY OF CHARATAL OR CHAUTAL IN THE TALAS OF DHRUPAD

Dr. Prem Lata Sharma

(Editor's Summary)

Today Chautal happens to be the predominant tāla for Dhrupad, so much so that Chautal itself is known as Dhrupad both in the written and oral traditions. But curiously enough, this name does not figure in the textual tradition of Sangīta Śāstra even until the 18th century and similarly in the written compilations of Dhrupad song texts also; it occurs only in the mid 18th century for the first time. This fact could not lead to the conclusion that Chautal came into being only in the 18th century. The hypothesis could be that this tāla bore some other name.

The author has examined the above hypothesis on the basis of textual tradition of Sangīta Śāstra and the written compilations of Dhrupad song-texts and has proved it with evidence not only from the above primary sources, but also on the basis of secondary sources of the 20th century. The final conclusion arrived at is that Chautal is a later name for Aṭhatāla mentioned in Sahasaras and Addatāla of the Karnatic tradition. The name Chautal is the product of tradition very very well recorded in the Radha Govinda Sangita Sara composed in the 18th century A D. in Jaipur according to which every tala was given an alternative name on the basis of the number of sounded beats forming part of it.

BIBLIOGRAPHY ON DHRUPAD (III)

Abbreviations :

D. A. 86 : *Dhrupad Annual*, vol. I, Varanasi, 1986.

D. A. 87 : *Dhrupad Annual*, vol. II, Varanasi, 1987.

Introduction :

The third issue of the *Bibliography on Dhrupad* introduces a few titles of interest for the study of Dhrupad, classified according to the system adopted in the First Volume of the *Dhrupad Annual*, 1986 (pp. 95-115), and maintained in the Second Volume, 1987 (pp. 119-121). Though some categories or sub-sections are not represented in the present issue—like the Sanskrit and Persian Sources on Dhrupad (Sections III and IV)—the numbering system is retained.

Though this Bibliography is basically non-critical, a few publications on Swāti Tirunāl and his Hindusthani Musical Compositions are introduced with a summarised description of contents, as I failed to even mention the name of the great patron of arts, himself a famous poet-composer-performer, in my 'Sources of Material for Critical Studies in Dhrupad Song-Texts' (D.A. 87 : pp. 33-60). His compositions in Dakkhinī Hindī, with borrowings from Braj and Khari Boli, set in North Indian musical forms, deserve a further research-work, introduced in the VIIth section of the present Bibliography.

A recent publication in French, by Alain Danielou, *Dhrupad*, is also described, as its French subtitle requires an English translation and a brief description of its contents (non-Dhrupad compositions).

I would be extremely grateful to receive suggestions of missing references, specially of recent books, papers published in specialised Journals, press-cuttings, reviews of concerts and recordings, Dhrupad Festivals brochures, published in India and not available in European libraries.

1. BOOKS AND ARTICLES WITH REFERENCE TO *DHRUPAD* :

A. English :

Deshpande, V. H.—'Carl Seashore, Banis and Gharanas', in *Nāda Rūpa*, vol. II, N° 2, Jan. 1963 : Part II (General Section), pp. 1-11. [*Passim*]

Erdman, Joan L.—'The Maharaja's Musicians : the Organization of Cultural Performance at Jaipur in the Nineteenth Century', in *American Studies in the Anthropology of India*, edited by Sylvia Vatuk, published under the auspices of the American Institute of Indian Studies, Manohar Publications, New Delhi, 1978 : pp. 342-367. [*passim*]

Jairazbhoy, N. A.—*The Rāgs of North Indian Music*. Their Structure and Evolution, Faber and Faber, London, 1971. [pp. 18-20 and *passim*]; review by B. C. Wade, in *Ethnomusicology*, vol. 17, N° 2, May 1973 : pp. 331-334.

Misra, Susheela—'The Khayal', in *Journal of the Sangeet Natak Akademi*, N° 64-65, April-Sept. 1982 : pp. 64-70. [pp. 64, 66-67, 70 and *passim*[

Sanyal, Ritwik—*Philosophy of Music*, Somaiya Publications Pvt. Ltd., Bombay, 1987. [pp. 5-8, 14-15, 19, 208-212 and *passim*]

Saxena, Sushil Kumar—'Aesthetics of Hindustani Music' in *Journai of the Sangeet Natak Akademi*, N° 28, April-June 1973 : pp. 5-23. pp. 8, 11, 18, 21 and *passim*

Wade, Bonnie C.—*Khyāl*. Creativity within North India's classical music tradition, Cambridge Studies in Ethnomusicology, Cambridge University Press, Cambridge, 1985. Cf. Index p. 309 : '*Dhrupad*'

II. BOOKS AND ARTICLES ON *DHRUPAD* :

A. English :

Delvoye, Francoise 'Nalini'—'Bibliography on *Dhrupad* (II)', in *D. A. 87* : pp. 119-121.

——'Sources of Material for Critical Studies in Dhrupad Song-Texts', in *D. A. 87* : pp. 33-60; Hindi Summary by the Editor : pp. 61-70: 'ध्रुपद के पद-पक्ष के समीक्षात्मक अध्ययन की सामग्री के स्रोत', डा० फ्रांस्वाज् देलवोआ "नलिनो".

Gupt, Bharat—'Oiigin of Dhruvapada and Krishna Bhakti in Brijabhasha', in *Journal of the Sangeet Natak Akademi*, N° 64-65, April-Sept. 1982 : pp. 55-63.

Müller, Peter—F.— 'Discography of EP-LP Recordings of Dhrupad Music', in *D. A. 87* pp. 122-128.

Mutatkar, Sumati—'Dhrupada-Some Vignettes', in *D. A. 87* : pp. 11-13; Hindi Summary by the Editor : pp. 14-15 : 'ध्रुपद-कुछ लघु शब्द-चित्र' प्रो० सुमति मुटाटकर.

Sanyal, Ritwik—'Dhrupad News', in *D. A. 87* : pp. 129-132; Hindi Translation by Subhadra Chaudhary, pp. 133-136 : 'ध्रुपद समाचार', डा० ऋत्विक् सन्याल.

Saxena, S. K.—'Alapa in Dhruvapada Gayaki', in *Journal of the Sangeet Natak Akademi*, N° 81-82, July-Dec. 1986 : pp. 49-52.

B. Hindi :

लाठ, मुकुन्द-'ध्रुपद का इतिहास : एक नई दृष्टि का आग्रह', in *D. A. 87* : pp. 16-27; English Summary by the Editor : pp. 28-32 : 'The History of Dhrupad : Plea for a New Approach', by Dr Mukund Lath.

शर्मा, प्रेमलता—'ध्रुपद और नृत्य', in *D. A. 87* : pp. 71-80; English Summary by the Editor : pp. 81-83 : 'Dhrupad and Dance', by Dr Prem Lata Sharma.

— 'ध्रुपद के पदों में "छाप" और उससे उद्भूत समस्याएँ', in *D. A. 87* : pp. 84-98; English Summary by the Editor : pp. 99-101 : 'Signature in Dhrupad Song-Texts and the Problems arising Therefrom', by Dr. Prem Lata Sharma.

— 'ध्रुपद में "ध्रुव", in *D. A. 87* : pp. 102-115; English Summary by the Editor : pp. 116-118 : 'The Dhruva in Dhrupad', by Dr Prem Lata Sharma.

V. *DHRUPAD* COLLECTIONS :

1. *Manuscript* :

संगीत सागर, अज्ञात लेखक द्वारा। पाण्डुलिपि, डा० मुकुन्द लाठ के निजी संग्रहालय में सुरक्षित, जयपुर; रचना काल : परवर्ती उन्नीसवीं शताब्दी.

2. *Printed Collections* :

B. Hindi

चट्टोपाध्याय, प्राणकृष्ण—**संगीत सुधा सागर**, प्रथम खण्ड (संक्षिप्त हिन्दी संस्करण); अनुवादक—नृपेन्द्रकृष्ण चट्टोपाध्याय 'नूटू बाबू'; प्रकाशक—देवेन्द्रकृष्ण चट्टोपाध्याय, बनारस, लगभग 1955.

C. **Bengali** :

Goswami, Kshetra Mohan—*Kantha Kaumudī* : mentioned in N. K. Bose, *Melodic Types of Hindusthān*, A Scientific Interpretation of the Rāga System of Northern India, Firma KLM Pvt. Ltd. (Calcutta), Jaico Publishing House, Bombay, 1960 : note 4, pp. 461-465; on page 462, N. K. Bose introduces *Kantha Kaumudī*, as "the first work on classical compositions in vocal music"; published after 1873, it contains 36 Dhrupad songs.

Bandyopadhyaya, Satya Kinkar—*Sangeet Jnan Prabesh* : mentioned in N.K. Bose, *Melodic Types of Hindusthān*, (*cf. supra*), p. 508; as per N.K. Bose (p. 488), S.K. Bandyopadhyaya is "a bold exponent of the Vishunupur School of Music"; no date mentioned.

Maitra, Babu Rāmlāl (of Rangpur in Northern Bengal)—*Dhrupad-Bhajanavālī*, or "Anthology of Dhrupad devotional poems", mentioned in Suniti Kumar Chatterji, (p, 87), *The National Flag*, A Selection of Papers Cultural and Historical, Mitra and Ghosh Publishers. Calcutta, 1944 : pp. 77-100 : 'Tansen as a Poet' (original paper dated 1932); *Dhrupad Bhajanavālī* is "a little work (quite useful) inspite the mutilation of the Hindi words in every line", giving some 371 Dhrupad songs, of which over 180 have the signature of Tānsen; no date mentioned.

E. French :

Daniélou, Alain—*Dhrupad*, Poemes classiques et themes d'improvisation des principaux Rāga de la musique de l'Inde du Nord, (i. e. classical poems and improvisation themes of the main Rāga-s of the Northern Indian Music), Nulle Part, Les Cahiers des Brisants Editeur, Mont-de-Marsan, 1986. This work contains a brief Introduction on the various genres of vocal music, illustrated by compositions in Braj, Panjabī, Hindī and Pūrvī, transliterated with staff notation and French translation : 12 Dhrupad-s, 2 Dhāmār-s, 17 Khyāl-s, one Tappā, 3 Tellānā-s, 5 Bhajana-s; the source of the compositions is not mentioned in the book, but Alain Danielou notified in a personal letter, that he collected them from his teacher, Shivendranath Basu 'Shantu Babu', the famous Vina player of Banaras).

VII. BIOGRAPHIES : BOOKS AND ARTICLES GIVING BIOGRAPHICAL PROFILES OF SOME OF THE PAST AND PRESENT EXPONENTS OF DHRUPAD :

7. *Swāti Tirunāl* :

A. On Swāti Tirunāl :

Iyer, S. Venkitasubramonia—*Swati Tirunal and His Music*, College Book House, Trivandrum, 1975. (pp. 55, 144-154, 164-4, 179, Select Bibliography : pp. 279-283).

Natarajan, S.—'Swati Tirunal Festival in Trivandrum. Interesting New Features', in *Sruti*, No. 18, 1st August 1985 : pp. 6-7.

Omchery, Leela—'Swati Tirunal' in *D. A. 86* : pp. I-III; Hindi translation : pp. III-IV. (Reproduced from *Indian Music Journal*, No. 2 : pp. 34-35).

Sambamoorthy, P.—'The Bibliography of H. H. Swati Tirunal' in *Sri Swati Tirunal Centenary Celebrations Souvenir*, Trivandrum, 1947.

B. On the Hindusthani Musical Compositions of Swāti Tirunāl :

Iyer, N. E. Wiswanatha, Editor—*Hindusthani Musical Compositions of Maharaja Swati Tirunal*, Sri Swati Tirunal Sangita Sabha (150th Birthday Celebrations of Swati Tirunal), Trivandrum, 1963. Devanagari text of the Hindusthani Compositions edited in Malayalam script by Chidambara Vadhyar, Trivandrum, 1916 (the first complete edition of Swati Tirunal's songs based on a single manuscript copy preserved in the Travancore Palace collection of manuscripts; compositions are arranged in alphabetical order, with a free paraphrase of some in Hindi and with an Introduction).

Iyer, S. Venkitasubramonia—*Swati Tirunal and His Music*, *cf. supra* : Chapter 14 : Hindusthani compositions : pp. 144-154 (introducing 38 compositions—including ten Dhrupad-s with the names of the Rāga-s, a brief description of contents and some translations in English).

Ratanjankar, S. N. and K. G. Ginde—*Maharaja Sri Swati Tirunal Hindustani Music Compositions*, Sri Swati Tirunal Sangita Sabha, Trivandrum, 1963. (This edition in which songs are 'set to suitable notation', 'contains six compositions given alternative notations by Vidwans Jitendra Abhisheki and Tiruchi Swaminatha Iyer to suit South Indian and North Indian musicians, but principally the former, with altered ragas and talas' : quoted from S. V. Iyer, *op. cit.* : pp. 146-7).

THE CO-EXISTENCE OF DHRUPAD AND KHYAL

(Extract from letter dated 26.9.86 of Dr. Richard Widdess of Cambridge addressed to Dr. Ritvik Sanyal).

"The Dhrupad Annual (1986) contains some very interesting material, especially the articles on Darbhanga and Dagar traditions by Anil Bihari Vyauhar and yourself. The article on Bhavabhatta looks valuable—I have not yet gone through it in detail—and Dr. Delvoye's bibliography is extremely useful. So is your lucid exposition of Indian musical philosophy, a subject that is very difficult to deal wi}h : you are of course, uniquely qualified for that task. I was rather taken aback by your strictures on khyal; of course I prefer dhrupad myself, as you know, but I wonder whether it it the best course to champion dhrupad by denigrating other forms ? I know there is a tendency to criticise the changes made by Muslim musicians in the nineteenth century, but I myself would prefer to see the good in khyal even if I see more good in dhrupad. Perhaps I am not single-minded enough. I agree that some khyal performances are bad, but surely not all ; I heard some excellent singing from Mohammad Sayced of Bombay in London only a few days ago. I can quite understand that it might have been necessary in the past for dhrupad singers to adopt an extremely purist approach in order to preserve their art, but I wonder whether this is necessary now ? Is it not possible for dhrupad and khyal to co-exist on equal terms, as I suggested in "Elephants and horses", each fulfllling different, but equally valuable, aesthetic criteria ? I feel it would be a pity if dhrupad singers were to alienate other musicians by expressing such hostility of their traditions."

[The above extract is given for two reasons : (1) The author's appreciation of the first Dhrupad Annual and (2) His feeling about the desirability of the co-existence of Dhrupad and Khyal. (Editor).]

ध्रुपद और ख्याल का सह-अस्तित्व

हमने ऊपर :रिचर्ड विडेस द्वारा डा० ऋत्विक् सन्याल को लिखे गये एक पत्र का उतना अंश उद्धृत किया है, जिसमें (१) ध्रुपद वार्षिकी ८६ की प्रशंसा है और (२) ध्रुपद ख्याल के सह-अस्तित्व की संस्तुति है। आपका कहना है कि अब वह समय आ गया है जब ध्रुपद और ख्याल का सम्मानपूर्वक सह-अस्तित्व होना चाहिए। यह क्यों आवश्यक हो कि ध्रुपद ख्याल का गर्हण करके अपनी प्रतिष्ठा बनाए। यह विचार हमें महत्त्वपूर्ण लगा; इसीलिए उक्त पत्र के इस अंश को हमने अंग्रेजी में उद्धृत किया है।

DHRUPAD NEWS

Dr. Ritwik Sanyal

Here is the third yearly report (Feb. 1987 to January 1988). We have had several dhrupad festivals this year in India and a chain of concerts and workshops abroad.

1. VARANASI-Feb. 87. The 1987 dhrupad mela at Dhrupad Teerth-Varanasi was the 13th consecutive annual. This was held from Feb. 24 to Feb. 26 by Maharaja Banaras Vidya Mandir Trust at Tulsi Ghat, Varanasi. The mela was inaugurated by Maharajkumar Anant Narain Singh, a trustee of the Maharaj Benares Vidya Mandir Trust on Feb. 24,87. In his inaugural speech, the Maharaj Kumar emphasized the importance of dhrupad and expressed his satisfaction on the impact of this mela. He thanked Professor Veerbhadra Misra for his selfless services in organising and conducting this mela. Around 32 artistes took part besides a student chorus.

The *vocalists* were Pt. Siyaram Tiwari, Pt. Mahadev Mishra, Ustad Zia Fariduddin Dagar (solo and jugalbandi with Ritwik Sanyal), Pawar Bandhu (jugalbandi), Sarvasri Vidur Mallik, Ramkumar Mallik, Premkumar Mallik, Raghuvir Mallik, Abhayanarayan Mallik, Umakant & Ramakant Gundecha (jugalbandi), Arun Bhattacharya, Laxman Bhatt Telang, and Ritwik Sanyal.

The pakhawaj accompanists and other musicians were : Raja Chhatrapati Singh. Swami Pagaldas, Pt. Tribhuvan Upadhyaya, Sarvasri Ramji Upadhyaya, Ramakant Pathak, Ravishankar Upadhyay, Lakshminarayan Pawar, Srikant Mishra, Chanchal Bhattacharya, Babulal Vaishya, Dinesh Prasad, Sachchidanad Soni, Chandrakumar Mallik, Saket Maharaj, Santoshkumar Misra (sarangi), Asitkumar Bannerji (Been), Rajbhan Singh (sitar), Jyotin Bhattacharya (sarod), Gorakhnath Das (vamsi).

The second (1987) issue of the Dhrupad Annual published by MBVM Trust was released in the opening function by the octogenarian scholar, Dr. Raghunath Singh, a former Member of Parliament. Dr. Singh emphasised the need of such specialised work in the cultural field as musicological journalism and expressed his deep satisfaction at the journal's high standard. The journal continued the scholastic efficiency and academic dignity of the inaugural issue published in 1986.

It cantains ten scholarly studies on dhrupad in many aspects. (Copies still available with us). The journal is the first of its kind in the world and unique in being singularly devoted to the renaissance of Indian national art music in all its facets—philosophical, historical, sociological, musicological, artistic (both technical and aesthetic) and so on.

As in previous years, this year too, Professor Virbhadra Mishra, the mahant of Akhara Goswami Tulsidas, assisted by a band of devoted workers such as Sri Maheshwar Jha and Sri Chhannulal made all arrangement for the Mela and did the management faultlessly.

2. DELHI-March 87. The Dhrupad Society of Dagar Brothers (NZ-NF) of Delhi held its Third *Dhrupad Samaroh* at Kamani Auditorium, Copernicus Marg, for three days from March 20 to March 22. Besides the founder Dagars (Ustad Nasir Zaheeruddin & Faiyazuddin), Ustad Rahim Fahimuddin Dagar, Ustad Zia Fariduddin Dagar, Pt. Vidur Mallik, Pt. K G Ginde, Smt Shubhada & Nirmala Desai gave vocal concerts. Ustad Zia Mohiuddin Dagar played on the rudravina. Ramakant Pathakji and other pakhawajis accompanied the singers and players.

3. BOMBAY-April 87. The Amir Khan Memorial Conference presented among many khyal items by khyal artistes, a dhrupad-dhamar bunch of songs by Dr. Ritwik Sanyal, the one hundred odd artistes and players present in the audience (since the Amir Khan Society is an exclusive Club of his fans and shagirds) were thrilled by the right variations of our musical themes and genres rendered by Ritwik.

4. VARANASI—Nov. 87. Pandit Amarnath Memorial Pakhawaj Festival was held at the Dhrupad Teerth, Tulsi Ghat. It was inaugurated by Pt. Kishan Maharaj. Pt. Amarnath's disciple, Pt. Tribhuvan Upadhyaya, veteran pakhawaj player, performed exquisietly in memory of his guru. Sriman Prem Kumarji Mallik of Allahabad University gave a vocal recital accompanied by another disciple of the late Amarnathji, Sri Srikant Misra (Tun Maharaj) on the pakhawaj, and Sri Ishwarlal Mishra on the tabla. Pt. Samta prasad and Smt. Mangala Tiwari also performed.

5. DELHI—Nov. 87. Dhrupad Society's Parampara Utsav (Bairam Khan DS) went on for three days at the Triveni auditorium. In the words of music critic Sri Raghava R. Menon (of TOI) : "In the annual gaggle of khyals in every style of voice and gharana, it feels good to hear the sound, focus and inspiration from which khyal itself had originated. The restraint, the majesty, the pacing, the disdain for over-

cxpressive *gamaks*, *murkis* and *khatkas*, the power of the straight, bold line, all show us the beauty of orthodoxy and tradition." The performances were all of the Dagar-Bani. There was Philippe Valisse, the Belgian student of the Delhi Dagars. There was Chandrashekhar Naringrekar (Z M D agar's disciple playing the surbahar). There were the Nandi sisters, Ashoka and Aloka (N A Dagar's disciples). The highlight of the Utsav was the Dagars themselves—Ustad Nasir Aminuddin (vocal) and his brothers Ustad Nasir Zaheruddin & Nasir Jaiyaruddin (vocal and Ustad Zia Mohiuddin playıng the *rudravina* "probably the only true interpreter of the strangely appealing instrument, now playing", to quote Mr. Menon. "He played a serene Yaman and followed with a kambhoji, which belongs to the southern school, both with inwardness and grace. The great instrument sang often with a human voice, as the Yaman traversed the scale with sure, clean strokes. The Parampara came through bright and clear in the Utsav."

6. *UK and the Continent Oct. 87-Feb. 88** Dr. Ritwik Sanyal (vocal) and Shri Ashok Tagore (pakhawaj), under the auspices of the UK University Circuit for Indian Classical Music, performed and lectured at about 18 centres of Music including several universities in England and Scotland from 17th October 1987 to 23rd November 1987. (The third invited artiste was Dr. Rajiv Taranath. a renowned sarod player of the khyal genre.) The principal venues were London (18.10, 5.12, School of Oriental & African Studies 8.12), Birmingham (21.10), Edinburgh (5.11), Aberdeen (3.11), Durham (31.10), Glasgow (2.11), Middlesborough (6.11), Bath (10.11), Colchester (11.11), Cambridge (Nov. 13-14, 5 Feb. 88), Darlington (17.11), Nottingham (20.11) and Leicester (21.11). For the Universities of Aberdeen and Edinburgh, Dr. Sanyal's concert was the first ever vocal Dhrupad event. Following the tour, Dr. Sanyal was Visiting Artist at the School of Oriental and African Studies, University of London, until 10 February 1988; he is collaborating with Dr. Richard Widdess, Lecturer in Indian Music at the School, on a book on dhrupad.[1] He also gave (lectures and practi-

* It was noted in the first and the second issues of the Dhrupad Annual that there has been a steady growth of Euro-American interest in Dhrupad during the last half a century.

1 Together they did a pilot project which lays the foundations for the book. It contains or consists of recording, transcription and analysis of a complete dhrupad performance (by Ritwik). It sheds light on the processes of composition, improvisation, musical structure, relevant aesthetic considerations etc. etc.

cal demonstration) lec-dems in dhrupad at the School of Oriental and African Studies, at Goldsmiths College, (University of London), and in the Faculty of Music, Cambridge University, and was invited to perform in Zurich (Jan. 16-17) by Rietberg Museum and in Stockholm (Jan 23-25) by Music Museum (January 29-31, 1988) Sanyal was accompanied on the pakhawaj by Baluji Srivastava at Zurich.

7. GWALIOR-Dec. 87. The Annual Tansen Samaroh of Gwaliar (Dec. 5-6) included a remarkable performance by Ustad Nasir Aminuddin Dagar in the first session on Dec. 5.

8. DELHI—Jan. 88. Spicmacay invited Ustad Zia Mohiuddin Dagar to give a series of lec-dems on the rudravina.

9. **Bombay**—Jan. 88. Ustad Zia Fariduddin Dagar gave dhrupad consert at St Xaviers' College Dhrupad Society. He was accompanied by pakhawaji Sri Kant Mishra.

ध्रुपद-समाचार

तृतीय वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत है। फरवरी ८७ से जनवरी ८८ तक अनेकों ध्रुपद समारोह अथवा आयोजन हुए।

वाराणसी, फरवरी, ८७—१९८७ का ध्रुपद मेला वाराणसी का त्रयोदश क्रमिक वार्षिक आयोजन था, जो २४ से २६ फरवरी तक महाराजा बनारस विद्यामंदिर न्यास द्वारा ध्रुपद तीर्थ तुलसी घाट पर सम्पन्न हुआ।

मेले का उद्‌घाटन महाराज बनारस विद्यामन्दिर न्यास के न्यासी महाराज कुमार श्री अनन्तनारायण सिंह ने किया। महाराजकुमार ने अपने उद्‌घाटन भाषण में ध्रुपद मेले का देश के ध्रुपद महोत्सवों के आयोजन पर प्रभाव का दिग्दर्शन कराया। महाराजकुमार ने इस मेले के आयोजन के लिए प्रो० वीरभद्र मिश्र के उदार सहयोग के लिये उन्हें धन्यवाद दिया। इसमें भाग लेने वाले कलाकार निम्नलिखित थे :—

गायक—१. पं० सियाराम तिवारी २. उस्ताद जिया फरूटद्दीन डागर ३. पवार बन्धु ४. विदुर मल्लिक ५. श्री रामकुमार मल्लिक ६. श्री प्रेमकुमार मल्लिक ७. श्री रघुबीर मल्लिक ८. श्री अभय नारायण मल्लिक ९. श्री उमाकान्त एवं रमाकान्त कुन्देचा (जुगलबन्दी) १०. श्री अरुण भट्टाचार्या ११ श्री लक्ष्मण भट्ट तैलंग १२. पं० महादेव मिश्र १३. श्री ऋत्विक् सान्याल।

संगति-प्रदाता—श्री राजा छत्रपति सिंह २ स्वामी पागलदास ३. श्री रामजी उपाध्याय ४. श्री रमाकान्त पाठक ५. श्री रविशंकर उपाध्याय ६. श्री असित कुमार बनर्जी (बीन) ७. श्री लक्ष्मीनारायण पवार ८. श्री श्रीकान्त मिश्र ९. श्री चंचल भट्टाचार्या १०. श्री संतोष कुमार मिश्र (सारंगी) ११. श्री बाबू लाल १२. श्री दिनेश प्रसाद १३. श्री सच्चिदानन्द सोनी १४. श्री चन्द्र कुमार मल्लिक १५. श्री राजभान सिंह (सितार) १६. पं० त्रिभुवन उपाध्याय १७. श्री ज्योतिश भट्टाचार्या (सरोद) १८. श्री गोरखनाथ दास (फलूट) १९. श्री साकेत महाराज।

१. ध्रुपद वार्षिकी का द्वितीय अंक इसी अवसर पर प्रकाशित हुआ। जिसमें ध्रुपद के विभिन्न पक्षों पर प्रायः १० विद्वत्ता-पूर्ण लेख सम्मिलित हैं। यह अपने ढंग की पहली विशिष्ट पत्रिका है। इसमें ध्रुपद गायन के दार्शनिक ऐतिहासिक संगीत संबन्धी विविधपक्षों का उद्‌घाटन है। इस पत्रिका का प्रकाशनोद्‌घाटन वयोवृद्ध विद्वान् एवं भूतपूर्व सांसद डा० रघुनाथ सिंह ने किया। डा० सिंह ने इस अवसर पर पत्रिका के उच्च स्तर एवं विविध पक्षों की सराहना की।

अन्य वर्षों को भाँति इस वर्ष भी प्रो० वीरभद्र मिश्र (गोस्वामी तुलसीदास अखाड़ा के महन्त) ने अपने समर्पित सहयोगियों तथा छन्नूलाल जी, श्री माहेश्वर झा आदि की सहायता से मेले की सम्पूर्ण व्यवस्था की।

२. दिल्ली में डागर बन्धुओं की ध्रुपद समिति द्वारा २० से २२ मार्च तक तीन दिन का ध्रुपद समारोह कमानी सभागृह में सम्पन्न हुआ। इसके संस्थापक डागरों (उस्ताद नसीरुद्दीन और फैयजुद्दीन) के अतिरिक्त उस्ताद रहीम फहीमुद्दीन

डागर, उस्ताद जिया फरीदुद्दीन डागर, पं० विदुर मल्लिक, पं० के० जी गिण्डे, श्रीमती सुभदा एवं निर्मला देसाई ने अपने स्वर-संगीत का गायन किया।

३. बम्बई—अप्रैल १९८७ अमीर खाँ स्मारक सम्मेलन में ख्याल के विविध प्रदर्शनों के अतिरिक्त ऋत्विक् सन्याल का ध्रुपद धमार गायन हुआ। ऋत्विक् के गायन से इस अवसर पर उपस्थित एक सौ के लगभग गायक चमत्कृत थे।

४. वाराणसी—पं० अमरनाथ मिश्र स्मारक पखावज महोत्सव नम्बर ८७ में तुलसी घाट पर सम्पन्न हुआ, जिसमें पं० अमरनाथ जी के शिष्य पं० त्रिभुवन उपाध्याय का पखावज वादन हुआ। इसका उद्घाटन किशन महाराज ने किया। पं० प्रेमकुमार मल्लिक ने श्रीकान्त मिश्र की पखावज संगति के साथ गायन प्रस्तुत किया। श्री ईश्वर लाल मिश्र ने तबलासंगति प्रदान की। पं० शामता प्रसाद और श्रीमती मञ्जुला तिवारी ने भी इस उत्सव में भाग लिया।

५. दिल्ली—१ नवम्बर ८७ ध्रुपद समिति द्वारा बैरमखां ध्रुपद उत्सव त्रिवेणी सभागृह में सम्पन्न हुआ। इस उत्सव में डागर बाणी का ही गायन हुआ। इसमें डागर परिवार के देशी-विदेशी शिष्यों के साथ ही उस्ताद नसीर अमीनुद्दीन, उस्ताद नसीर जहीरुद्दीन और नसीर फैयजुद्दीन ने इस वाणी के विविध पक्षों का प्रदर्शन किया।

६. इंगलैण्ड और यूरोप में अक्टूबर ८७ से फरवरी ८८ तक यू० के० यूनिवर्सिटी सर्किट फार इण्डियन क्लासिकल म्युजिक के तत्त्वावधान में डा० ऋत्विक् सन्याल (गायन) तथा श्री अशोक टैगोर (पखावज) ने इग्लैण्ड तथा स्काटलैण्ड के कई विश्वविद्यालयों सहित लगभग १८ केन्द्रों पर गायन और प्रवचन का संपादन किया। (इनके साथ तृतीय आहूत कलाकार खयाल मर्मज्ञ राजीव तारानाथ थे) इस आयोजन के मुख्य स्थान थे—लन्दन (१८.१०; ५.१२), स्कूल आफ ओरियण्टल एण्ड अफ्रिकन स्टडीज (८.१२) बर्मिघम (२१.१०), एडिनबर्ग (५.११) कोलचेस्टर (११.११), कैम्ब्रिज (नव० ३-१४, फरवरी ५,१९८८), डार्लिंगटन (१७.११), नार्टिंघम (२०.११) और लाइचेस्टर (२१.११)। एबरडीन और एडिवर्ग विश्वविद्यालयों में सन्याल का ध्रुपद गान वहाँ प्रथम ध्रुपद अवतरण था। इन यात्राओं के बाद डा० सन्याल लण्डन यूनिवर्सिटी के स्कूल आफ ओरियण्टल एण्ड अफ्रिकन स्टडीज में १० फरवरी १९८८ तक विजिटिंग कलाकार थे। उस स्कूल में भारतीय संगीत के प्राध्यापक डा० रिचार्ड विडेस के एक पुस्तक के डा० सन्याल ध्रुपद पर सहयोगी थे। सन्याल ने ज्यूरिख, स्टाक होम, गोल्डस्मिथ कालेज आदि स्थानों पर भी प्रदर्शन किया।

७. ग्वालियर—दिसम्बर १९८७—यहाँ वार्षिकी तानसेन तानसेन हुआ, जिसमें उस्ताद नसीर अमीनुद्दीन डागर ने अपनी कला का प्रदर्शन किया।

८. दिल्ली—१९८८—स्पिक मेसी में जिया मोहिउद्दीन डागर ने रुद्र वीणा का प्रदर्शन किया।

९. बम्बई जनवरी १९८८—सेण्ट जेवियर कालेज ध्रुपद सोसाइटी में उस्ताद जिया फरीदुद्दीन डागरने गायन किया। पखावज पर श्रीकान्त मिश्र ने संगत की।

चर्चा स्तम्भ

इस अंक से हम इस स्तम्भ का आरम्भ कर रहे हैं। प्रथम अंक में हमने ध्रुपद गायन की दरभंगा परम्परा पर डॉ० अनिल बिहारी व्यौहार का एक लेख दिया था। उस पर पं० नरहरि पाठक, ग्राम बेलीसराय, डाक मोतिहारी, जिला पूर्वचम्पारण, बिहार की ओर से एक टिप्पणी-परक लेख गत वर्ष प्राप्त हुआ, तब तक द्वितीय अंक की सामग्री प्रेस में जा चुकी थी, अतः उसे उस समय सम्मिलित करना असंभव था। उनका वह लेख अब हम भाषागत किंचित् सम्पादन सहित दे रहे हैं। इसमें दरभंगा-परम्परा के संबंध में ऐसी सूचनाएँ हैं, जो हमारे प्रथम अंक में पं० अभय नारायण मल्लिक से प्राप्त सूचनाओं से किंचित् भिन्न हो सकती हैं। हमारे पास इनके परीक्षण का कोई उपाय नहीं है। इसलिए पं० नरहरि पाठक द्वारा प्रषित सूचनाएँ यथावत् दे रहे हैं। वास्तव में यह पं० क्षितिपाल मल्लिक का विद्योत्कर्ष सूचित करने के लिए प्रस्तुत बिहार की एक अन्य ध्रुपदाचार्य वंशावली है। कोई अनुसंधाता इन दो धाराओं से प्राप्त सूचनाओं का परीक्षण कभी कर सकेगा, ऐसी हमें आशा है। —(संपादिक)

दरभंगा-परम्परा में ध्रुपद-गायकी और प्राचीन मल्लिक घराना

पं० नरहरि पाठक

ध्रुवपद या अचल पद गायकी की परम्परा यानी १३ अंगों की गायकी का सम्पूर्ण प्रकार दरभंगा के गंगदह ग्राम के उस प्राचीन मल्लिक घराने की देन है, जिसके पूर्व पुरुष संभवतः राजस्थान से आये और गौडहारा बानी के गायक गौड़ ब्राह्मण थे।

इस घराने के पूर्वजों द्वारा संकलित मौखिक परम्परा के आधार पर यह सुना गया है कि बिहार में सर्वप्रथम १४वीं शताब्दी ई० के मध्यकाल में राजस्थान से भागकर या भ्रमणवंश पं० प्रेमचन्द्र पाठक ने पदार्पण किया और डुमराव (भोजपुर जिला) महाराज के दरबार में उच्च स्थान पाया। पूर्वजों द्वारा कही घटनानुसार अकाल एवं सूखे से त्रस्त इस प्रदेश में इन्होंने घण्टों मेघमल्हार गाकर इतना पानी बरसाया कि जब राजा ने खुद आकर इनके हाथों से साज़-बाज लेकर गाना रोक दिया तभी वर्षा भी रुकी। तब से ये वहीं निवास कर संगीत-साधना करते रहे।

पं० प्रेमचन्द्र पाठक संभवतः पहले महान् ध्रुपद गायक बिहार में आये थे। उनका जन्म विक्रम संवत् १४वीं शताब्दी में हुआ था। उनके दो पुत्र हुए, एक शिव बक्स पाठक और दूसरे जयदेव पाठक। दोनों महान् पिता के अद्वितीय पुत्र हुए और दोनों ने "जोड़ी बंदिश" तथा ध्रुपद गायकी में काफी यश अर्जित किया। पूर्वजों द्वारा वर्णित एक घटना यह भी है कि एक बार यह दोनों जोड़ी गायक आरा जिला विक्रम के निकट कोवाथ के नवाब के यहाँ निमन्त्रण पाकर पहुँचे। नवाब के यहाँ दो और अच्छे

गायक पहले से मौजूद थे। दोनों में विकट प्रतियोगिता हुई, जो संभवतः ध्रुपद जोड़ी गायकी की पहली प्रतियोगिता थी।

विजयोपरान्त नवाब साहब से २०० बीघा जमीन पाकर वहाँ निवास स्वीकार करके भी यह दोनों विद्वान् गायक संतुष्ट नहीं थे। दूसरी ओर परास्त गायक, जिनमें एक जादूगर भी था, उनकी उपस्थिति से असन्तुष्ट थे। नवाब साहब के लाख कहने पर भी वह जादूगर पं० शिव बक्स पाठक के मुँह से गिरते खून को नहीं रोक सका। यह दोनों भाई भक्त थे। अतः वहाँ से कुछ दूर "जखनी माँ" के मन्दिर में शरणापन्न हो तीन दिन तीन रात गाना गाते रहे। प्रसन्न होकर प्रणतपालिनी माँ ने प्रत्यक्ष आविर्भूत होकर वर देते हुए कहा कि छोटे भाई की आवाज तो पहले जैसी नहीं होगी, लेकिन इनका पुत्र बड़ा प्रतापी तथा महान् गायक होगा।

नवाब साहब के यहाँ पर ही इन विद्वानों को "मल्लिक" उपाधि से अलंकृत किया गया। फिर भी ये गायक द्वय असन्तुष्ट तथा खिन्न रहने लगे। कुछ दिन बाद छोटे भाई पं० जयदेव पाठक मल्लिक के दो पुत्र हुए—पं० हस्तीराम मल्लिक और पं० बस्तीराम मल्लिक।

पिता और ताऊ जी की सतत साधना से दोनों भाई शीघ्र ही अच्छे जोड़ी गायकों के रूप में तैयार होने लगे। इसी क्रम में पहले ताऊ जी तथा कुछ काल बाद पिताजी की मृत्यु का सदमा सहन करते हुए भी दोनों अद्वितीय जोड़ी गायक के रूप में घराने की विशेषताओं के साथ तैयार हो गये।

कोआथ नवाब की ओर से सारी सुख-सुविधाएँ प्राप्त होने पर भी अतीत में पिता और ताऊ के साथ घटित दुःखद घटनाओं के कारण आहत होकर दोनों भाई पुनः डुमराव महाराज के दरबार में आये और महाराज को संगीत से मंत्र-मुग्ध कर दिया। वहीं पर राजाश्रय में ये ससम्मान रख लिये गये।

जब ये दोनों भाई पुनः डुमराव में रखे गये तब वहाँ पर छन्द, प्रबन्ध तथा बंदिश गायकी के दो प्रमुख विद्वान् बच्चूजी एवं घनाजी पहले से मौजूद थे। उनके घराने में क्रमशः सहदेव दूबे, लल्लन दूबे, रघुनन्दन दूबे, रामबड़ाई दूबे इत्यादि प्रमुख विद्वान् हो चुके है। आज कल ९० वर्ष की अवस्था में राम प्रसाद पाण्डे जीवित बचे हैं। पं० हस्तिराम मल्लिक के कोई सन्तान नहीं थी, लेकिन बस्तीराम मल्लिक के चार पुत्र हुए। शम्भूमल्लिक, रामसहाय मल्लिक, ईश्वर मल्लिक, उदित मल्लिक। ये चारों भाई पिता और ताऊ की सम्पूर्ण साधना के उत्तराधिकारी बने। इनमें से प० शम्भू मल्लिक विद्वान् मृदङ्ग वादक बनकर उभरे और शेष तीनों भाई सम्पूर्ण ध्रुपद की तेरह अङ्गों की गायकी में पूर्ण प्रतिभाशाली बन कर संगीत-गगन पर नवोदित भास्कर की भाँति छा गये।

पं० उदित मल्लिक और रामसहाय मल्लिक जोड़ी गायक के रूप में पिता से अधिक यशस्वी होने लगे। पं० शम्भू मल्लिक ४० वर्ष की अल्पावस्था में अविस्मरणीय मृदङ्ग वादन की छाप छोड़कर स्वर्गवासी हो गये।

इसी काल में दरभंगा के दो विद्वान् युगल गायक पटना के नवाब के यहाँ रहते थे, जिनके नाम थे—राधाकृष्ण, कर्त्ताराम। पूर्वजों से सुनी हुई एक घटना के अनुसार राधाकृष्ण, कर्त्ताराम के साथ उदित मल्लिक, रामसहाय तथा ईश्वरी मल्लिक की सिर्फ राग भूपाली में तीन दिन तीन रात तक लगातार संगीत और बंदिश की विकट प्रतियोगिता हुई, जिसमें चौथे दिन राधाकृष्ण कर्त्ताराम ने अपनी कमी महसूस करके इन्हें श्रेष्ठ माना और काफी सम्मानपूर्वक स्वागत किया। तीनों भाई पुनः डुमराव महाराज के यहाँ लौट गये।

पं० ईश्वरी मल्लिक को तीन पुत्र हुए। शेष दो भाई निःसन्तान थे। इन पुत्रों के नाम हैं—भरोसा मल्लिक, रामपदारथ मल्लिक और वाणी प्रकाश मल्लिक। इसमें से प्रथम और तृतीय जोड़ी गायक के रूप में उभरे और मंझले रामपदारथ मल्लिक मृदङ्ग वादक के रूप में प्रसिद्ध हुए।

तीनों भाइयों की विद्वत्ता आसपास की सभी रियासतों में चर्चा का विषय थी। भ्रमण और प्रतियोगिता के प्रसङ्ग में ये तीनों पटना, बेतिया आदि स्थानों में काफी ख्याति और सम्पत्ति अर्जित कर पाये थे।

पं० भरोसा मल्लिक ने दरभंगा के राधाकृष्ण, कर्त्ताराम के पौत्र श्री निहाल मल्लिक से अपनी पुत्री का विवाह कर वहाँ से सम्बन्ध स्थापित किया। उस समय राधाकृष्ण, कर्ताराम के बाद से दरभंगा संगीत तथा बंदिश गायकी के क्षेत्र में हलका माना जा रहा था और डुमराव महाराज की प्रतिष्ठा यह कलाकार बढ़ा रहे थे।

बुजुर्गों के अनुसार इसी क्रम में डुमराव महाराज के यहाँ एक यज्ञ में निमन्त्रण पाकर दरभंगा महाराज पधारे थे और यहीं पर उन्हें वाणी प्रकाश मल्लिक और भरोसा मल्लिक के संगीत से मन्त्रमुग्ध होने का अवसर मिला। वाणी प्रकाश मल्लिक के एकमात्र पुत्र जयप्रकाश मल्लिक जो अभी छोटे थे, वे भी पिता के साथ गा रहे थे। विदा होते समय दरभंगा महाराज ने महाराज डुमराव से वचन लेकर इन गायकों को मांग लिया। बहुत ही भारी मन से एक राजा ने दूसरे ब्राह्मण राजा को दान में इन कलाकारों को दे दिया और ये दरभंगा आ गये और इस प्रकार दरभंगा में ध्रुपद, बंदिश और अन्य गायकी की सुदृढ़ बुनियाद रखी गयी।

पं० जयप्रकाश मल्लिक जो वाणी प्रकाश मल्लिक के एकमात्र पुत्र थे, बड़ी शान से दरभंगा महाराज के प्रमुख दरबारी गायक तथा गुरु के रूप में संगीत की सेवा पिता की तरह करते रहे। इन्हें भी एक पुत्र पं० क्षितिपाल मल्लिक हुए।

पं० शितिपाल मल्लिक दरभंगा घराने में अपने वंश की पूर्ण गायकी में पारंगत होने के साथ-साथ सितार तथा मृदंग के भी प्रकांड विद्वान् बने। दरभंगा महाराज लक्ष्मीश्वर के काल में एक लम्बी गुरु-शिष्य परंपरा की नींव डालने में समर्थ हुए और बड़ी शिष्य मण्डली तैयार की, जिनमें प्रमुख थे अमता ग्राम के पं० राजित-राम मल्लिक (वर्तमान पं० रामचतुर मल्लिक के पिता), देवकीनन्दन पाठक मृदंगवादक

(ग्राम भड़सर, रेपुरा, बलिया, उ० प्र०) विख्यात सितार वादक पं० रामेश्वर पाठक, दरभंगा के राय साहब जिनकी लिखी पदावली 'गोपीश्वर विनोद' है, सीतामढी जिला के चहुँरा ग्राम के निवासी बाबू मथुरा प्रसाद सिंह, महाराज महेश्वर सिंह आदि श्रेष्ठ विद्वान् ।

महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह और महाराज रामेश्वर सिंह के दरबारी गायक पं० क्षितिपाल मल्लिक अपनी विद्वत्ता और गुरु परम्परा के लिए अभी भी आधार बिन्दु माने जाते हैं । वर्तमान पं० रामचतुर मल्लिक का बचपन भी उनके शिष्यत्व में बीता है । पं० सियाराम तिवारी को ध्रुपद की तालीम देने वाले पं० विष्णुदेव पाठक जो कि विख्यात मृदंग वादक थे, भी पं० क्षितिपाल मल्लिक तथा उनके बड़े पुत्र नरसिंह के के साथ संगीत-शिक्षा व संगति पाकर काफी आगे बढ़े थे ।

इस प्रकार पं० क्षितिपाल मल्लिक के समय दरभंगा में ध्रुपद गायकी और संगीत की सही जड़ जम चुकी थी । भक्त गायक होने के कारण महाराज रामेश्वर सिंह के कड़े रुख से रुष्ट होकर व अन्य सम्बन्धियों की गलत सलाह मानकर पं० क्षितिपाल मल्लिक महाराज का स्थान छोड़कर राजितराम मल्लिक नामक सम्बन्धी के ग्राम गंगदह में, जो कि अमता के बगल में है, जाकर बस गए । शताब्दियों बाद राजाश्रय से दूर होकर यह विद्वान्-वंश अंधकार के गहरे कुंए में चला गया । पं० क्षितिपाल मल्लिक के दरबार छोड़ने से महाराजा असन्तुष्ट थे, लेकिन अन्य सलाहकार और अन्य मल्लिक गायक-वादक उनकी संगति और शिक्षा से लाभ उठा रहे थे । वही गंगदह ग्राम में सेकड़ों बर्षों से पल्लवित इस प्राचीन म ल्लक घराने के प्रतिनिधि कलाकार को तीन पुत्र हुए—पं० नरसिंह मल्लिक, पं० महावीर मल्लिक तथा पं० यदुवीर मल्लिक । तीनों भाई संगीत-साधना में आगे बढ़ने लगे । बड़े भाई नरसिंह मल्लिक बहुत ही योग्य व अद्वितोय गायक के रूप में उभरे और जोड़ी गायक के रूप में महावीर मल्लिक उनका साथ देने लगे ।

राजाश्रय से दूर गंगदह ग्राम में यह प्राचीन मल्लिक घराना विद्या के क्षेत्र में जहाँ चरम सीमा पर था, वहाँ अर्थाभाव ने इन्हें गहरी खाई में डाले रखा । इसी क्रम में गुरुवर तथा नायक पं० क्षितिपाल मल्लिक का स्वर्गवास संवत् १९८० (सन् १९२३) में हो गया । उसके बाद अल्पायु में ही पं० नरसिंह मल्लिक का भी स्वर्गवास हो गया । उनके दो पुत्र थे—पं० नरहरि पाठक मल्लिक और रामानुज मल्लिक ।

पं० नरसिंह मल्लिक के असमय निधन से इस घराने के संगीत को धक्का लगा । फिर भी पं० महावीर मल्लिक अपने छोटे भाई यदुवीर मल्लिक के साथ जोड़ी गायन की अपने घराने की परम्परा को जोवित रखकर काफी आगे बढ़ाते रहे । इस गायक जोड़ी में बड़े पं० महावीर मल्लिक से संगीत की संगति वर्तमान पं० रामचतुर मल्लिक को मिली, ऐसा वे स्वयं बताते हैं ।

महावीर मल्लिक को चार पुत्र हुए—रघुवीर मल्लिक, राघवेन्द्र मल्लिक, महेश्वर और मोहन। छोटे भाई यदुवीर मल्लिक को भी तीन पुत्र हुए—हरिशंकर, हरिनारायण, विजय।

पं० नरसिंह मल्लिक के दो पुत्रों में से प्रथम पं० नरहरि पाठक मल्लिक, इस समय ६० वर्ष की अवस्था में इस घराने के सशक्त कलाकार व प्रसिद्ध विद्वान् हैं। इन्हें संगीत की शिक्षा अपने नाना पं० चन्द्रिका प्रसाद दूबे (गया पाण्डे) जो कि विख्यात इसराज वादक थे, से मिली। इनसे आपने आलाप और ख्याल सीखा तथा ध्रुपद धमारादि की शिक्षा इन्हें अपने चाचा से बहुत दिनों तक मिली। आलाप एवं ध्रुपद घराने की १३ अंगों की गायकी में पारंगत होने के उपरान्त इन्होंने जीवन भर संगीत की साधना करके घराने की विशेषताओं को जीवित रखा है। इन्हें भी ६ पुत्र हैं, जो संगीत साधना कर रहे हैं—लक्ष्मीनारायण, जगतनारायण, प्रेमनारायण, राजनारायण, दिवाकरनारायण, प्रभाकरनारायण।

ध्रुपद वार्षिकी १९८६ में प्रकाशित लेख में (पृष्ठ-३९) यह कहा गया है कि "क्षितिपाल जी ने अपने चाचा के अलावा धर्मपाल जी से भी शिक्षा ली थी। किन्तु क्षितिपाल मल्लिक के कोई चाचा नहीं थे तथा वे स्वयं एक ऐसे घराने के महान् गायक थे जिनकी बदौलत दरभंगा घराने में ध्रुपद गायकी आज भी जीवित है। अतः इस भ्रामक कथन के प्रत्याख्यान के लिए सही सच्चाई का निरूपण करते हुए यह लेख प्रस्तुत है। इस वंश में ५०० वर्षों से ऊपर तक लगातार महान् संगीतज्ञ विद्वान् होते आना एक सच्चाई है और इस मल्लिक घराने के वर्तमान कलाकार पं० नरहरि पाठक इसके उदाहरण हैं"।

पं० क्षितिपाल मल्लिक एक नायक और गुरु विद्वान् थे। पटना में १९८६ में आयोजित अखिल भारतीय ध्रुपद समारोह की पत्रिका में पं० क्षितिपाल मल्लिक के विषय में राजितराम मल्लिक की वाणी निम्नलिखित छन्द में उद्धृत है :—

को मिथिलापति के दरबार में,
गुनियन में गुनवान कहै हैं।
को श्लोकहि वेद पुरानन,
रागन बांधिके (तालन) गाय सुनै हैं।
को अब ताल के भेदन को,
लै साथ ही संग मृदंग बजै हैं।
कब लौं अस दिन करिहैं विधना,
क्षितिपाल सो गायक गाय सुनै हैं।

इस प्रकार अपने घराने से पूर्णरूपेण शिक्षित पं० क्षितिपाल मल्लिक ने किसी दूसरे से शिक्षा नहीं ली है, बल्कि उनकी शिक्षा से संगीत और दरभंगा की ध्रुपद गायकी को आधारस्तंभ मिला है। इस प्राचीन मल्लिक घराने के दरभंगा आने से ही यह संभव हुआ है। पं० क्षितिपाल मल्लिक छन्द, प्रबन्ध, त्रिबट, तिलाना, ध्रुपद के सम्राट् थे।

वंश-वृक्ष

प्राचीन मल्लिक घराना, जिसके प्रथम पूर्वज सम्भवतः राजस्थान से डुमराव आये तथा बहुत बाद में दरभंगा गये, सर्वत्र ईस्वी सन् का उल्लेख है।
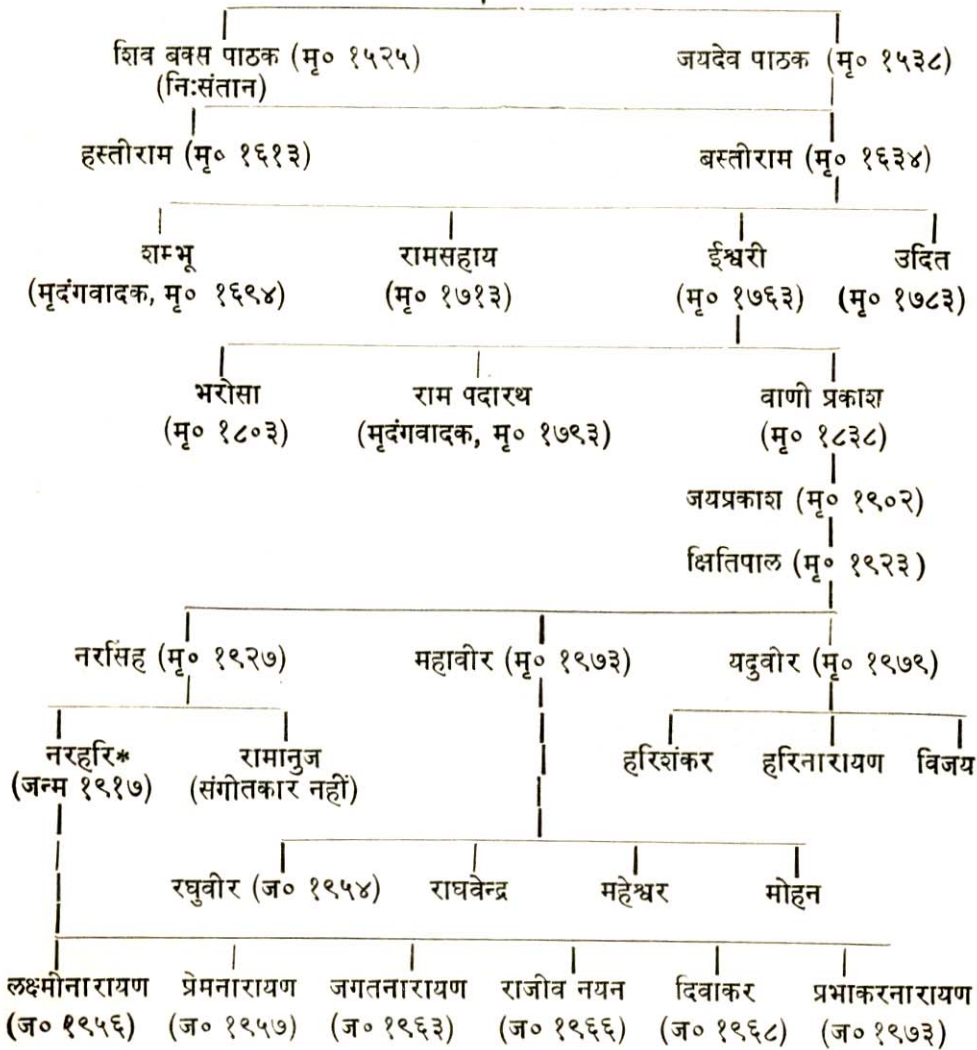
* लेख में इनकी आयु साठ वर्ष बताई गई है, किन्तु जन्म सन् १९१७ के अनुसार आयु सत्तर वर्ष बैठती है। शायद १९२७ के स्थान पर १९१७ लिखा गया है।

टिप्पणी :—पाठक वंश को ही बाद में "मल्लिक" उपाधि मिलने से कभी-कभी "पाठक" और "मल्लिक" दोनों और कभी एक नाम लगाया जाता है।

DICUSSION FORUM

(DA 1 included an accouut of the Darhhanga tradition of Dhrupad. Pt. Narhari Pathak sent a rejoinder in order to establish the excellence of Pt. Kshitipal. This material was received after sending the matter of DA 2 in press. Hence it was not possible to include it in No. 2. We are beginning this discussion forum with this rejoinder. We have no way of verifying the authenticity of the information collected from Pt. Abhaya Narayan Mallik for DA No. 1 or of the rejoinder received from Pt. Narhari Pathak. We are reproducing Shri Pathak's account of his genealogy as it is with the hope that some scholar will some day conduct research on the basis of both the streams of information. Editor.)

The Old Mallik School of Darbhanga in Dhrupad.

It is handed down in oral tradition that an accomplished musician named Pt. Premchandra Pathak arrived in Bihar in the later-half of the 14th century A. D., most probably from Rajasthan. He gained royal patronage in the state Dumrao (Dist. Bhojpur). His descendants are still practising Dhrupad and Pt. Kshitipal (died 1923) was in the sixth generation of his descendants. He received training from his father and there can be no question of his having learnt from any other tradition, as has been claimed in DA 1 (page 39).

His grandson Pt. Narahari Pathak is still alive and is an accomplished performer of Dhrupad. He has six sons, some of whom are also learning and performlng Dhrupad.

OUR CONTRIBUTORS

1. Rai, Anand Krishna, M.A., Ph.D. (BHU), Retired Professor and Head, Department of History of Art, BHU. Internationally renowned as an expert on Indian Painting, specialisation in Mughal period; author of several research papers and editor of several publications on Art and Culture.

   Address : Sita Nivas, Banaras Hindu University, Varanasi 221005.

2. Delvoye, Francoise, 'Nalini' is a French Indologist from the Sorbonne University, Paris. After completing a critical edition and French translation of the Bhamvar-git of Nand-das (Ph. D., 1976), she started a research work on dhrupad compositions, from a literary point of view. She is presently collecting and editing the dhrupad campositions attributed to Tansen (from the oral and written tradition).

   Address : Dr. Francoise Delvoye 'Nalini', 4 rue Alfred de Musset, 91220 Bretigny/Orge France.

3. Jaiswal, Radheshyam, M.A., M.Mus., Ph.D., Lecturer in Musicology, Indira Kala Sangit Vishwavidyalay, Khairagarh 491881 (MP).

4. Pathak, Narhari, Traditional Dhrupad musician of the Mallik School of Darbhanga.

   Address : Village Belisarai, Post Motihari, Dist. East Champaran, Bihar.

5. Ratate, Vinayak Ramchandra, Traditional Pandit of a renowned Vedic family of Varanasi. Specialization in Atharva Veda and Purāṇa. Presently Research Assistant, Department of Musicology, Banaras Hindu University, Varanasi.

6. Sanyal Ritwik, M.A. (Philosophy, Bombay University), M. Mus. (Vocal Music B.H.U.), Ph.D. (B.H.U.), Lecturer in Vocal Music, Faculty of Performing Arts, B.H.U., Varanasi-221005. Has had intensive training in Dhrupad in the Dagar tradition from Ud. Zia Mohiuddin Dagar. Has participated in almost all Dhrupad festivals organised at various places in India during the last fourteen years. Has also given performances abroad and conducted workshops on Dhrupad in

Austria and U. K. Author of 'Philosophy of music' and 'Hindu music'.

Address : M 5/6 Tulsi Manas Mandir Colony, Varanasi-221005.

7. Sharma, Prem Lata, Ex-Dean, Faculty of Music and Fine Arts and later Faculty of Performing Arts, Ex-Head, Department of Musicology (all in Banaras Hindu University), presently Vice-Chancellor, Indira Kala Sangit Vishwavidyalaya, Khairagarh 491881 (M.P.).

8. Upadhyaya, Adinath. M. Musicology (B. H. U.) working on Bhavabhatta's works for his Ph.D. Degree in the Department of Musicology, B. H. U.

Address : 374 A Near Central School, D. L. W. Varanasi.

9. Widdess Richard, M.A., Ph.D., Lecturer in Indian Music at the School of Oriental and African Studies, University af London. Has conducted serious research on the treatment af ragas in Sangita Ratnākara, the Kudimiyamalai inscription, is deeply interested in Dhrupad. Author of several books and research papers.

Address : 69, Gwydir Street, Cambridge CBI 2 I.G, UK.

हमारे निबन्ध लेखक

१. राय, आनन्द कृष्ण, एम. ए., पी-एच. डी., अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, कला इतिहास विभाग, का. हि. वि.। भारतीय चित्रकला के विशेषज्ञ के रूप में विश्व-विख्यात। मुगल-कला में विशेषज्ञता। अनेक शोध प्रबन्धों के प्रणेता एवं भारतीय कला एवं संस्कृति में प्रकाशनों के सम्पादक। पता—सीता निवास, काशी हिन्दूविश्वविद्यालय, वाराणसी, २२१ ००५

२. उपाध्याय, आदिनाथ, एम. म्युजिकोलाजी (बी. एच. यू.); पी.-एच. डी. उपाधि के लिए म्यूजिकोलाजी विभाग में भावभट्ट की कृतियों पर कार्यरत; पता— ३७४ ए, (डी. एल. डब्लू सेण्ट्रल स्कूल के समीप) वाराणसी।

३. जायसवाल, राधेश्याम, एम. ए., एम., म्यूज., पी-एच. डी., संगीत शास्त्र व्याख्याता, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, ४९१ ८८१

४. डेलवाय, फ्रेन्क्वाइस 'नलिनी' (जन्म १९५०); सोरबोने विश्वविद्यालय की प्राच्यविद्याविदुषी; नन्ददासकृत भँवरगीत का पाठ संपादन और फ्रेञ्च भाषा में अनुवाद (पी.-एच. डी. १९७६) करने के बाद इन्होंने ध्रुपद की रचनाओं का साहित्यिक दृष्टि से अध्ययन प्रारम्भ किया; संप्रति इण्डो-फ्रेञ्च फेलोशिप (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा फ्रांस सरकार) के अन्तर्गत तानसेन की विख्यात ध्रुपद रचनाओं का संकलन तथा संपादन कर रही हैं।

५. पाठक, नरहरि, पता—ग्राम वेलिसराय, डाक-मोतिहारी, जि० पूर्व चम्पारण बिहार।

६. रटाटे, विनायक रामचन्द्र, काशी के सुप्रतिष्ठित वैदिक पण्डित परिवार के सुयोग्य वंशधर। अथर्ववेद और पुराण में विशेषज्ञता। अधुना संगीत शास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शोध सहायक।

७. विडस रिचर्ड, एम. ए., पी. एच. डी., लन्दन विश्वविद्यालय के स्कूल आफ ओरियन्टल एण्ड अफ्रिकन स्टडीज में भारतीय संगीत के व्याख्याता। संगीत रत्नाकर के राग प्रतिवादन पर और कुडिमिया मलाई शिलालेख पर विशेष अनुसन्धान। ध्रुपद में विशेष रुचि। कई पुस्तकों और शोध-पत्रों के लेखक।

८. शर्मा, प्रेमलता, भूतपूर्व संकाय प्रमुख, म्यूजिक एवं फाइन आर्ट्स संकाय (संप्रति परफार्मिङ्ग आर्ट्स संकाय), भूतपूर्व अध्यक्ष संगीत शास्त्र-विभाग (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय); संप्रति कुलपति इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़-४९१८८१ (म० प्र०)।

९. सन्याल, ऋत्विक, एम. ए. (दर्शनशास्त्र, बम्बई विश्वविद्यालय); एम. म्यूज. (स्वरसंगीत, बी. एच. यू.) पी-एच. डी (बी. एच. यू.); प्राध्यापक—मंच कला संकाय, का. हि. वि. वि.; डागर परम्परा में जिया मोहउद्दीन डागर के निर्देश में ध्रुपद की प्रगाढ़ शिक्षा; विगत दश वर्षों में देश में हुए समस्त ध्रुपद कार्यक्रमों में भाग लिया; विदेश में भी ध्रुपद गायन किया तथा यूरोप एवं इंग्लैण्ड में ध्रुपद सम्मेलन आयोजित किया।

•

PUBLICATION OF THE ALL INDIA KASHIRAJ TRUST

Critical Editions and Translations

1.	*Vāmana Purāṇa*—Crit. Ed.	Rs.	250
2.	*Vāmana Purāṇa*—Text with English Translation	Rs.	200
3.	*Vāmana Purāṇa*—Text with Hindi Translation	Rs.	100
4.	*Kūrma Purāṇa*—Crit. Ed.	Rs.	250
5.	*Kūrma Purāṇa*—Text with English Translation	Rs.	200
6.	*Kūrma Purāṇa*—Tsxt with Hindi Translation	Rs.	100
7.	*Varāha Purāṇa*—Crit. Ed. Ordinary edition— Rs. 265/-; Deluxe edition—	Rs.	1000
8.	*Varāha Purāṇa*—Text with English Translation Ordinary edition—Rs. 220/-; Deluxe edition—	Rs.	700
9.	Varāha Purāṇa (Text only)	Rs.	100
10.	*Varāha Purāṇa*—Hindi Translati on	Rs.	240
11.	*Devīmāhātmya*	Rs.	10
12.	*Svaryakhaṇḍa of the Pudma Purāṇa*	Rs.	40
13.	*Rāmacharita-Mānasa*	Rs.	15

Studies

14.	Matsya Purāṇa—A Study By V.S. Agrawala	Rs.	40
15.	Garuḍa Purāṇa—A Study By N. Gangadharan	Rs.	40
16.	Nārada Purāṇa—A Study By K. Damodaran Nambiar	Rs.	75
17.	Niti-Section of Purāṇārthasaṁgraha	Rs.	2
18.	Vyāsa-Praśasti By V. Raghvan	Rs.	1
19.	Greater Rāmāyaṇa By V. Raghavan	Rs.	30
20.	Viṣṇupuraṇa Visayānukramaṇi By Madhvacharya Adya	Rs.	5
21.	Bṛihaspati-Saṁhitā of the Garuḍa Purāṇa By L. Stembach	Rs.	10
22.	Mānavadharmaśāstra[I-III]and Bhaviṣya Purāṇa	Rs.	20
23.	Dr. Hazra Commemoration Volume, Part I	Rs.	150

Journal

24.	Purāṇa—Half Yearly Research Journal Annual Subscription—Inland Rs. 50, £Foreign 5		
25.	DHRUPAD Annual Subscription	Rs.	50

The books can be had of the General Secretary, All-India Kashiraj Trust, Fort, Ramanagar, Varanasi and atso from all leading Indological Book-Sellers.